बी.ए. (ज्योतिष) षष्ठ सेमेस्टर

CORE COURSE

COURSE CODE- (BAJY(N)-302

COURSE TITLE- सिद्धान्त ज्योतिष

विशेषज्ञ समिति एवं अध्ययन समिति

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह नेगी – अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर रेनू प्रकाश – निदेशक
मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – समन्वयक
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. प्रमोद जोशी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी),
ज्योतिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रोफेसर श्याम देव मिश्र
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ

प्रोफेसर प्रेम कुमार शर्मा
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. रत्न लाल शर्मा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. प्रभाकर पुरोहित, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी)
ज्योतिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

सम्पादक

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखक	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	1	1,2,3,4
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	2	1,2,3,4
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	3	1,2,3,4,,5,6

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रथम संस्करण : 2026 **ISBN No. -**

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी **मुद्रक** : Uttarayan Prakashan, Haldwani

नोट: - इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी स्थित सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

सिद्धान्त ज्योतिष **CORE COURSE** **BAJY(N)-302**

बी.ए. षष्ठ सेमेस्टर – (ज्योतिष)

क्रम व इकाइयों के नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1 परिचय एवं साधन	**2**
इकाई 1 सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय	3-19
इकाई 2 अहर्गण साधन एवं प्रकार	20-29
इकाई 3 मध्यम ग्रह साधन	30-38
इकाई 4 मन्दफल एवं शीघ्रफल ज्ञान	39-51
खण्ड 2 ग्रहस्पष्टीकरण एवं अन्य विचार	**52**
इकाई 1 ग्रहस्पष्टीकरण	53-80
इकाई 2 ग्रहगति विचार	81-98
इकाई 3 ग्रहों के उदयास्तादि विचार	99-110
इकाई 4 दृक्कर्मादि विचार	111-123
खण्ड 3 ग्रहण विचार	**124**
इकाई 1 ग्रहण विचार	125-140
इकाई 2 सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण	141-155
इकाई 3 भूभा विचार	156-170
इकाई 4 लम्बन नति	171-183
इकाई 5 शर एवं बलन	184-195
इकाई 6 नवविधकाल मान परिचय	196-211

खण्ड - 1
परिचय एवं साधन

इकाई – 1 सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय
1.3.1 गणित तथा गोल का सामंजस्य को सिद्धान्त कहते है
1.3.2 विभिन्न आचार्यों के मत में सिद्धान्त
1.3.2.1 बृहत्संहिता में
1.3.2.2 सिद्धान्तशिरोमणि में
1.3.2.3 सूर्यसिद्धान्त में
1.3.3 बोध प्रश्न
1.4 ग्रह साधन व कालसाधन में सिद्धान्त
1.4.1 समान विभाग
1.4.2 कालगणना
1.4.3 सिद्धान्त के तीन मुख्य परम्परा
1.4.3.1 आर्य परम्परा
1.4.3.2 ब्रह्मपरम्परा
1.4.3.3 सूर्यपरम्परा
1.4.4 बोध प्रश्न
1.5 सिद्धान्त ज्योतिष का महत्त्व
1.5.1 सिद्धान्त की विशेषता
1.5.2 गणित और गोल का अन्योन्याश्रयत्व
1.5.3 बोध प्रश्न
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थसूची
1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी.ए.षष्ठ सेमेस्टर के BAJY(N)-302 की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष के बारे में विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त कर चुके हैं।

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य कार्य व उद्देश्य ही काल साधन है। काल साधन ग्रहों के अधार पर किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि काल के साधन से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियां प्राप्त करने तथा काल साधन करने की विधाओं को जानने के लिये सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में जानना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई में काल साधन के लिये आवश्यक उस सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय आप प्राप्त करेंगे।

आइए हम सभी इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में जानने का प्रयास करते हैं।

इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष की आवश्यकता तथा सिद्धान्त ज्योतिष के महत्त्व के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से है –

- ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध के बारे में सामान्य परिचय प्राप्त करना है।
- ग्रहों के आधार पर काल का साधन किस प्रकार से किया जाता है तथा उन ग्रहों के साधन में सिद्धान्त ज्योतिष की भूमिका के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करना है।
- सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख भेदों, विचारधाराओं व परम्पराओं से सम्बन्धित सामान्य जानकारी प्राप्त करना है।
- अन्य स्कन्धों के लिये उपादेय सिद्धान्त ज्योतिष के वैशिष्ट्य के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
- निष्कर्ष के रूप में कहा जाय तो इस इकाई का मुख्य उद्देश्य काल साधन करने वाले ज्योतिष के एक महत्त्व पूर्ण अंग से परिचित होना है।

1.3 सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय

ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्त्तकों (ऋषियों) द्वारा ज्योतिष के प्रधान रूप से तीन स्कन्ध बताए गए हैं– सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। वराहमिहिर ने भी इसकी पुष्टि करते हुए अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता में लिखा है – 'ज्योति:शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्।' इसके अतिरिक्त प्रायः ज्योतिषशास्त्र के अधिकांश आचार्य इस विभाजन से सहमत है। सूक्ष्म अभिलक्षणों को गिनती में लेने पर ज्योतिष

का अनेक भागों में विभाजन करना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु ये सभी भाग उपरोक्त तीन मुख्य भागों में ही समाहित हो जाते है। उन भागों को अनेक स्थानों में स्कन्ध के नाम से व्यवहार किया गया है।

'सिद्धान्त' शब्द का संस्कृत वाङ्मय में अनेक अर्थ प्राप्त होते है। परिस्थितियों के आधार पर इसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। ज्योतिष एक प्रायोगिक विज्ञान है। अर्थात् इसमें समय, स्थान तथा व्यक्ति के अनुसार नियम परिवर्तित होते है। काल साधन के नियम भी परिवर्तनशील है। काल साधन के नियमों के साथ साथ परिवर्तन के नियमों को स्थिति के अनुसार प्रयुक्त करने का निर्देश सिद्धान्त देता है। अर्थात् सिद्धान्त विभिन्न नियमों का समाहार है और उन नियमों के प्रयोग करने पर प्राप्त होने वाला फल विलक्षणता को धारण करता है। वह फल स्थान दिशा और काल पर आधारित होता है। यदि संक्षेप में कहना है तो काल साधन हेतु प्रयुक्त प्रयोगों का नियामक है सिद्धान्त ज्योतिष।

सिद्धान्त के नाना प्रकार की परिभाषाओं में अन्यतम है " अन्ते सिद्धः" का सिद्धान्त। अर्थात् प्रयोगादि असकृत् व वारं वार क्रियाकलापों के अन्त में जो फल सिद्ध हुआ उसे भी **सिद्धान्त** कहा जा सकता है।

उलझन से सुलझने का मार्ग सिद्धान्त है। जैसे दो ग्राम भार वाली पिन (सूई) को पानी में डालने पर डूब जाती है। किन्तु 400 टन लोहे का जहाज पानी में नहीं डूबता है। यदि सोचे कैसे सम्भव है तो साधारण रूप से असम्भव लगता है। वह जहाज किस कारण से नहीं डूबता है ? नही डूबने के लिये उसका निर्माण कैसे करना है? किन किन नियमों का पालन करना है? उसका लम्बाई चौडाई गहराई आदि का नाप क्या होना है? इन प्रश्नो का उत्तर जो मिलता है वहीं सिद्धान्त कहलाता है। कार्य क्यों हुआ? कैसे हुआ? होने के लिये क्या कारण है? इन प्रश्नो का निर्माण कर उनका उत्तर यदि सफल परीक्षण के साथ प्राप्त करते है तो उन उत्तरों के समूह को सिद्धान्त कह सकते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति एवं स्थिति के आधार पर अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करके काल का साधन किया जाता है। इसी काल साधन विधि के सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रन्थकार विभिन्न मार्गों में समझाने का प्रयास किये है। अनेक प्रकार की युक्तियों के समूह को भी इस सन्दर्भ में सिद्धान्त कह सकते हैं।

सिद्धान्त के महत्त्व के सन्दर्भ में आचार्य भास्कर लिखते है -

यः सिद्धान्तमनन्तयुक्ति विततं नो वेत्ति....

इस वाक्य में सिद्धान्तं अनन्तयुक्ति विततं इस खण्ड पर ध्यान देने से उपरोक्त वाक्य स्पष्ट हो जाते है। मध्यम ग्रह को स्पष्ट ग्रह बनाने के लिये जितने उपायों की आवश्यकता होती है उन सभी उपायों के

समूह को सिद्धान्त कहते हैं।

यः (जो) अनन्तयुक्तिविततं (अनन्त युक्तियों से युक्त) न वेत्ति (नहीं जानता है) वह दीवार पर बनाये गये राजा के चित्र के बराबर होता है। अर्थात् राजा का चित्र जैसे राजा नहीं हो सकता है उसी तरह जातक आदि जानकर भी सिद्धान्त की युक्तियों को नहीं जानने वाले की स्थिति होती है।

1.3.1 गणित तथा गोल के सामंजस्य को सिद्धान्त कहते हैं -

कालसाधन ग्रहों के आधार पर होता है। ग्रहों का साधन दो प्रकार से होता है। एक गणित से तथा दूसरा प्रत्यक्ष वेध से। गणित से ग्रह का साधन करने के लिये व्यक्त और अव्यक्त संज्ञाओं से विभक्त गणित का ज्ञान अपेक्षित है। वेधप्रक्रिया को अपनाने के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल से एक ही फल यदि प्राप्त होता है तो उसे स्पष्ट कहते है। अत एव स्पष्टग्रहसाधन में गणितागत तथा दृगुपलब्ध दोनों ग्रहों का सामंजस्य अपेक्षित है। इसी सामंजस्य को सिद्ध करने के लिये जिन उपायों का वर्णन किया गया है उन सभी को समष्टि रूप से 'सिद्धान्त' कहते है। अर्थात् सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित ग्रन्थों में गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता साधन के लिये अनेक प्रकार के उपाय बताये गये है।

गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता को ही 'स्पष्ट ग्रह' कहते है तथा स्पष्ट ग्रहों से ही अभीष्ट फल की सिद्धि होती है। इस सन्दर्भ में कुछ आचार्यों के वाक्य यहां प्रस्तुत हैं जो ग्रहस्पष्टीकरण के लिये उत्पन्न सिद्धान्त ज्योतिष के आन्तर्य को और स्पष्ट कर सकते हैं।

आचार्य भास्कर के अनुसार -

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खैटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां **स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्द्या**॥

सिद्धान्त शिरोमणि., गणिताध्याय, स्पष्टाधिकार, श्लो.१

यात्रा विवाह जातक आदि में स्पष्ट ग्रहों से ही स्पष्ट फल प्राप्त होता है। अतः स्पष्टग्रहों का ही प्रयोग अभीष्ट है। उसी सन्दर्भ में आचार्य कहते है **स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्द्या**। या दृक् गणितयोः ऐक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। अर्थात् जो प्रक्रिया दृक् तथा गणित से प्राप्त फलों का एकीकरण का मार्ग बताती है वही स्पष्टीकरण प्रक्रिया है। इसी वाक्य से स्पष्ट होता है कि ग्रह साधन गणित और गोल के सामंजस्य से उत्पन्न होता है।

सूर्यसिद्धान्त में –

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः ।
प्रयान्ति **तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्**॥

सूर्यसिद्धान्त नामक सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थ में ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के सन्दर्भ में आचार्य द्वारा प्रस्तुत यह वाक्य ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के महत्त्व को तथा सिद्धान्त ज्योतिष के उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है। तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् । तत् स्फुटीकरणं आदरात् प्रवक्ष्यामि। मै उस स्पष्टीकरण को आदर से बताता हूं। किस स्पष्टीकरण को? यथा दृक्तुल्यतां
ग्रहाः प्रयान्ति। जैसे ग्रह दृक्तुल्यता को प्राप्त करते है?

सूर्य सिद्धान्त के इन वचनों से भी गणित तथा गोल का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है तथा उसी सम्बन्ध के आधार पर गणितागत ग्रहों को दृक्तुल्य ग्रह बनाने की विधि भी बताई गई है। सूक्ष्मरूप से बताया जाय तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मार्गदर्शन करने का कार्य ही सिद्धान्त ज्योतिष करता है।

1.3.2 विभिन्न आचार्यों के मत में सिद्धान्त

ज्योतिष शास्त्र के अनेक आचार्य हैं। इस शास्त्र के मुख्य रूप से अट्ठारह प्रवर्तक माने जाते हैं। उन सभी प्रवर्तक आचार्यों की तीनों स्कन्धों में कृतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। उन आचार्यों में तथा उनके अनन्तर काल में जिन जिन आचार्यों ने सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में अथवा ज्योतिष के स्कन्धों के बारे में चर्चा की है उन आचार्यों का तथा उनके द्वारा प्रस्तुत चर्चा की संक्षेप प्रस्तुति यहा की जा रही है। इस से सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित जानकारी और सुदृढ हो सकती है।

आचार्यों में कुछ के नाम इस प्रकार से है। नारद, वसिष्ठ, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट, भास्कराचार्य, लल्ल, श्रीपति, मुञ्जाल आदि। सबसे पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ। ब्रह्मा ने नारद को तथा नारद ने शौनक को एवं शौनक ने आगे की श्रेणियों को यह ज्ञान प्रदान किया। प्रवर्तकों की श्रेणी में महर्षि नारद और वसिष्ठ आदि आते हैं। आचार्य आर्यभट को प्रथम पौरुष ज्योतिष ग्रन्थकार कहते हैं। अर्थात् महर्षियों की श्रेणी के बाद जो मानव मात्र ज्योतिष शास्त्र में ग्रन्थ रचना करने का प्रयास किया उनमें पप्रथम व्यक्ति आचार्य आर्यभट है। आर्यभट के ही समय के आचार्य रहे आचार्य वराह मिहिर। इस नाम से सभी विदित ही हैं। इनके कुछ समय के बाद क्रमशः लल्ल मुञ्जाल, श्रीपति, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे आचार्य उत्पन्न हुए जो सिद्धान्त ज्योतिष को नई दशा और दिशा प्रदान किये।

उन आचार्यों में से तथा उन ग्रन्थों में से सिद्धान्त को स्पष्ट करने वाली कुछ उक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं। प्रदत्त सन्दर्भ प्रायः सभी आचार्यों के मत को दर्शाते हैं।

1.3.2.1 बृहत्संहिता में -

ज्योतिश्शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता।

स्कन्धेस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ

होरान्योङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोपरः।।

अनेक प्रकार के विषयों से संवलित ज्योतिष शास्त्र को तीन मुख्य स्कन्धों में विभक्त किये है। उनका इस प्रकार से विभक्त करने का आधार उनकी उपयोगिता ही है। निरवशेष जहाँ पर उन विषयों का वर्णन किया जाता है उसे संहिता स्कन्ध कहते है। जिस स्कन्ध में गणित के आधार पर ग्रहों का साधन किया जाता है उसे तन्त्र अथवा सिद्धान्त कहते है। अंग विनिश्चय अर्थात् अंग यानी लग्न का विनिश्चय यानी निर्णय जहां होता है उसे होरा कहते है।

इस श्लोक में आचार्य स्पष्ट कर चुके है कि जहां पर गणित के आधार पर ग्रहों का साधन होता है उसे सिद्धान्त या तन्त्र कहते है। गणित के आधार पर ग्रहों का साधन अनेक प्रकार के युक्तियों के आधार पर होता है। गणित का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ पर लक्ष्य सिद्धि हेतु एक से अधिक मार्ग होते है तथा ये सभी युक्ति अथवा तर्क के अधीन होते है। अतः स्पष्ट रूप से अनेक प्रकार के युक्तियों का प्रयोग जहां किया जाता है उसे सिद्धान्त कहा जाता है।

1.3.2.2 सिद्धान्तशिरोमणि में -

सिद्धान्तशिरोमणि में वर्णित सिद्धान्त का लक्षण बहुविस्तृत तथा सरल है। इस वर्णन में सिद्धान्त ज्योतिष का बिन्दुशः उद्धरण प्राप्त होता है।

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

जिस स्कन्ध में -

- काल का आरम्भ त्रुटि से तथा अन्त प्रलय से होता है। अर्थात् काल का अत्यन्त सूक्ष्मविभाग त्रुटि है तथा अत्यन्त विशालतम इकाई की समाप्ति प्रलय से होती है। प्रारम्भिक अवयव से अन्तिम अवयव तक काल की कलना पद्धति जहाँ वर्णित है तथा जहाँ पर उस प्रकार के काल का साधन करने की विधि बतायी गयी हो।
  (त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना)
- ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र और आर्क्ष नामक नवविध कालमानों का वर्णन जहाँ पर किया गया हो।
  (मानप्रभेदः)

- द्युसदां अर्थात् आकाश में वास करने वाले ग्रहों का चार (गति) जहाँ बताया गया हो।
  (चारश्च द्युसदां)
- दो प्रकार के गणित का जहाँ विशद वर्णन हो।
  (द्विधा च गणितं)
- उत्तर सहित प्रश्न जहाँ पर हो।
  (प्रश्नास्तथा सोत्तराः)
- भूमि के अभिप्राय से ग्रहों की स्थिति जहाँ पर वर्णित हो।
  (भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं)
- यन्त्रों का वर्णन किया गया हो।
  (यन्त्रादि यत्रोच्यते)

ज्योतिष के उस भाग को गणित प्रबन्ध में बुद्धिमानों ने सिद्धान्त नामक संज्ञा दी। (सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः - सः गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः सिद्धान्त इति उदाहृतः)

1.3.2.3 सूर्यसिद्धान्त में -

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

अपनी अपनी कक्षाओं की विलक्षणता के कारण आठ प्रकार की गति के साथ राशि चक्र में चलने वाले ग्रह जिस तरीके से दृक्तुल्यता को प्राप्त करते हैं उस स्फुटीकरण नामक प्रक्रिया को मै (सूर्यांशपुरुष) बताता हूँ।

ग्रह अपने कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की गतियों से भ्रमण करते हैं। ग्रह गति के वर्णन से सम्बन्धित पाठ में ग्रह गति का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त करेंगे। सामान्य जानकारी के लिये ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों के नाम यहाँ पर उल्लिखित है। वैसे तो उनका नाम ही उनके लक्षणों को प्रतिबिम्बित कराने में पर्याप्त है।

आठ प्रकार की ग्रह गति -

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।

वक्रा, अतिवक्रा, विकला , मन्दा, मन्दतरा, शीघ्रा, शीघ्रतरा, समा ये ग्रह की आठ प्रकार की गतियाँ हैं।

1.3.3 बोध प्रश्न

1. मध्यम और दृगुपलब्ध ग्रह एक होने पर उसको किस नाम से जाना जाता है?
2. दृगुपलब्ध ग्रह किसे कहते है?
3. प्रथम पौरुष ग्रन्थकार के रूप में किसे जाना जाता है?
4. बृहत्संहिता में सिद्धान्त के लिये किस नाम का उल्लेख है?
5. " दृग्गणितैक्यकृत् " का क्या अर्थ है?

1.4 ग्रह साधन व कालसाधन में सिद्धान्त

सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्योद्देश्य काल का साधन है। काल के साधन हेतु ग्रहों का साधन किया जाता है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है भूकेन्द्राभिप्रायिक ग्रह स्थिति। अर्थात् भूमि के दृष्टि कोण में चारों ओर परिकल्पित क्षेत्र व राशिचक्र में ग्रह की कोणीय स्थिति को ग्रह स्थिति कहते हैं तथा उसी स्थिति के आधार पर समय का साधन किया जाता है।

सिद्धान्त ज्योतिष मुख्य रूप से काल साधन करने के लिये ग्रहों का साधन करता है। इस बात को और सूक्ष्मता के साथ जानने के लिये एक जिज्ञासा को शान्त करना आवश्यक है। वह जिज्ञासा है " काल साधन ग्रहों की स्थिति के आधार पर कैसे किया जाता है? "

काल स्थान सापेक्ष व व्यक्ति सापेक्ष होता है। यह बहुत गम्भीर विषय लगता है। सिद्धान्त ज्योतिष को समझने के लिये इस गम्भीर विषय को सरलता से समझने का प्रयास करना आवश्यक है। एक पंक्ति में भोजन करने चार लोग बैठे है। पंक्ति में पहला व्यक्ति भोजन 15 मिनट के समय में, दूसरा 20 मिनट में, तीसरा 40 मिनट में तथा चौथा 60 मिनट में पूरा करता हैं। इसको इस तरीके से दोबारा पढने का कोशिश कीजिये। भोजन पूरा करने में पहले व्यक्ति को 15 मिनट का , दूसरे को 20 का , तीसरे को 40 का तथा चौथे को 60 मिनट का समय लगा। यहाँ भोजन का पूरा करना व्यक्ति सापेक्ष रहा।

इसी प्रकार से सूरज प्रत्येक स्थान में अलग अलग उदय होता है। प्रत्येक स्थान में उदय तथा अस्त का अन्तराल अलग अलग होता है। जब एक स्थान में सूर्योदय और अस्त के बीच का समय लगभग 12 घंटे का है उसी समय दूसरे स्थान में वह समय छ महीने का भी हो सकता है। कुछ स्थानों में 60 दिन का भी हो सकता है और कुछ स्थानों में 60 घटी का भी हो सकता है। सूरज तो वही है। उसकी गति भी सब के लिये बराबर है। किन्तु गोलाकार पृथ्वी में अन्य पिण्डों के भ्रमण के कारण उत्पन्न होने वाली परिस्थिति अलग अलग है।

सिद्धान्त स्कन्ध इसी विलक्षणता को अनेक माध्यमों से समझाने का प्रयास करता है। अनेक प्रकार से एक ही काल का साधन बताये जाने के पीछे सत्यापन विधि मुख्य कारक है। एक से प्राप्त काल का सत्यापन दूसरे विधान से प्राप्त कालखण्ड से होता है।

1.4.1 समान विभाग

पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्त की कल्पना काल साधन हेतु की गई है उसको क्षेत्र कहते है। कल्पना शब्द का प्रयोग शास्त्र के लिये समस्यापूर्ण नहीं है। वास्तव में चारों और राशि चक्र में दिखने वाली राशियाँ तारों के समूह के कारण उत्पन्न खगोलीय दृश्य है। इनका वर्णन प्राच्य (पूरब के देशों) में और पाश्चात्य (पश्चिमी देशों) में अनेक प्रकार से किया गया है। अनेक वर्णनों में मतभेद भी है। अतः राशिचक्र को व समय साधन हेतु निर्णीत वृत्ताकार स्थान को कल्पना कहना अनुचित नहीं है।

इस क्षेत्र को कालविभागों के अनुरूप विभक्त किया गया है। वे विभाजन इस प्रकार से है-

क्षेत्र विभाग	काल विभाग
राशिचक्र (360 अंश)	वर्ष (360 दिन)
राशि (बारहवाँ भाग)	मास (बारहवाँ भाग)
अंश (राशि का तीसवाँ भाग)	दिन (मास का तीसवाँ भाग)
कला (अंश का साठवाँ भाग)	घटी (दिन का साठवाँ हिस्सा)

इन विभागों में ग्रहों की गति के आधार पर काल के विभाग कलित होते है। अर्थात् क्षेत्र वा राशिचक्र में ग्रहों की गति काल के विभिन्न घटकों की कलना (गणना) करने में सहयोग करते है।

1.4.2 कालगणना

सिद्धान्त की परिभाषा के सन्दर्भ में ९ प्रकार के कालमानों की चर्चा की गई। उन कालमानों को और सूक्ष्म रूप से समझने की कोशिश करने पर ग्रहों के आधार पर कालगणना करने का तात्पर्य भी समझ में आ जाता है।

सूर्य को राशिचक्र का पूरा भ्रमण करने के लिये एक वर्ष का समय लगता है। क्षेत्र तथा काल के समान विभागों की बात को यहाँ एक बार स्मरण करना है। क्षेत्र विभाग में सबसे बडा विभाग राशि चक्र है। उसके बराबर का काल विभाग है वर्ष। सूर्य को राशि चक्र में भ्रमण करने के लिये व सूर्य को राशि चक्र का एक चक्कर पूरा करने के लिये जो समय लगता है वह काल विभाग के सबसे बडे अवयव (हिस्सा) वर्ष के बराबर है। उसे सौर वर्ष कहते है। सौर वर्ष का बारहवाँ भाग सौरमास कहलाता है। अर्थात् इस समय में सूर्य एक राशि का भोग करता है। सौरमास का तीसवा भाग एक सौर दिन कहलाता है।

इसी प्रकार से अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में भी विचार करना है। सूर्य और चन्द्रमा की युति को अमावास्या कहते है। सूर्य और चन्द्रमा की यह युति मीन राशि में होने के बाद पुनः मीन राशि में होने तक एक चान्द्र वर्ष होता है। मीन राशि में संगम के बाद प्रत्येक राशि में सूर्य और चन्द्रमा की प्रत्येक युति एक एक चान्द्रमास को दर्शाती है। सूर्य से आगे बढकर अधिक गतिमान चन्द्रमा लगभग २९ दिनों के अन्तराल में पुनः सूर्य को प्राप्त कर लेता है। चन्द्रमा का गति विलक्षण होने के कारण यहाँ पर सूर्य और चन्द्र के 360 अंशों के अन्तर को तीस भागों में विभक्त कर चान्द्रदिनों का व्यवहार किया जाता है। 360 को तीस से भाग देने पर 12 अंश प्राप्त होते है। सूर्य चन्द्रमा के प्रत्येक बारह अंश के अन्तराल को तिथि कहते है तथा तिथि को ही
चान्द्र दिन कहते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति के आधार पर कालावयवों की गणना करने की प्रथा सिद्धान्त ज्योतिष के रूप में अनादि काल से प्रचलित है। सौरवर्ष की भांति गौरववर्ष आदि भी विचारणीय है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि काल साधन करने के लिये तथा काल के विविध अवयवों का अनुमान लगाने के लिये ग्रहों का सहारा लिया जाता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य आर्यभट की उक्ति स्मरणीय है -

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे

काल अनादि और अनन्त है तथा उस काल का ग्रहों और राशियों के आधार पर क्षेत्र में अनुमान लगाया जाता है।

1.4.3 सिद्धान्त की तीन मुख्य परम्परा

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य काल साधन ही है। काल का साधन ग्रहों के आधार पर क्षेत्र (राशि चक्र) में किया जाता है। कालक्रम में भारत में कालगणना की तीन मुख्य परम्परा उत्पन्न हुये। उन तीन परम्पराओं का नाम है आर्य, सूर्य तथा ब्राह्म। आर्यभट के सिद्धान्त के अनुसार काल गणना करने वालों को आर्यसिद्धान्त के अनुयायी, सूर्य सिद्धान्त के अनुसरण करने वालों को सूर्यानुयायी तथा ब्रह्मसिद्धान्त का अनुसरण करने वालों को ब्रह्मसिद्धान्तानुयायी कहते हैं।

1.4.3.1 आर्य परम्परा

आर्यभट की एक मात्र कृति आर्यभटीयम् नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ केवल सिद्धान्त ज्योतिष के ही विषयों का वर्णन करता है। इसमें आर्यभट काल को अनादि और अनन्त मानते है तथा उपदेश देते है कि काल का अनुमान क्षेत्र (राशिचक्र) में ग्रह और राशियों के आधार पर लगाया जाता है।

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे

अपने मंगलाचरण में आर्यभट लिखते हैं -

आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलं च।

अर्थात् आर्यभट गणित कालक्रिया और गोल नामक तीन विषयों को बता रहें हैं।

गणित काल साधन का मूलाधार है। गणित के ज्ञान के बिना काल गणना की नहीं जा सकती है। ज्ञानियों का एक पक्ष का मानना है कि बीजगणित के आविष्कारक आर्यभट ही हैं। अपने ग्रन्थ के गणित पाद में आर्यभट अनेक प्रकार के गणितीय विषयों का उल्लेख किये हैं जो उनके पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों में देखने को नहीं मिलता है। उनमें से कुछ है व्यास और परिधि का सम्बन्ध, दशमलवपद्धति, दशोत्तरसंख्यामान आदि। शून्य के भी आविष्कारक के रूप में आर्यभट आजके विद्वानों में प्रसिद्ध है।

अन्य सिद्धान्तों से आर्यभट का सिद्धान्त मुख्य रूप से मन्वन्तर प्रमाण में मतभेद रखता है। अन्य सिद्धान्तों में एक मनु का अन्तर 71 महायुग का है वहीं आर्यभट मनु को 72 महायुग का मानते है। इसके अतिरिक्त अनेक सिद्धान्त है जो आर्यभट के सिद्धान्त में देखने को नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिये अयनांश विचार को लिया जा सकता है। आज प्रबल विवादांश के रूप में प्रचलित अयनांश का किसी भी रूप में वर्णन आचार्य आर्यभट नहीं किये हैं।

आर्यभट के समय के पहले ही ज्योतिष के तीनों स्कन्धों का प्रचार प्रसार था। किन्तु आर्यभट के द्वारा कहीं भी फलित ज्योतिष आदि का विचार नहीं किया गया। अपनी कृति में आर्यभट लिखते हैं कि वे सत् और असत् ज्ञान से युक्त समुद्र से सत् का ग्रहण कर वर्तमान सिद्धान्त बनायें हैं। इससे प्रतीत होता है कि आर्यभट फलादेश आदि विधाओं का विरोध करते हैं।

1.4.3.2 ब्रह्मपरम्परा

ब्रह्मसिद्धान्त का मूल विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बताया जाता है। प्रवर्तकों के वर्णन के समय में भी आचार्य लोग वर्णन करते है कि सब से पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ तथा ब्रह्मा ने इस विद्या को आगे के लोगों को प्रदान किया। ब्रह्म सिद्धान्त की मुख्य विशेषता है सृष्टि और कल्प के मध्य में अन्तर को नहीं मानना।

अर्थात् ब्रह्मसिद्धान्त में कल्पारम्भ ही सृष्ट्यारम्भ भी है। सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है कि कल्पारम्भ के बाद ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिये कुछ समय लगा। किन्तु इस बात को ब्रह्मसिद्धान्त स्वीकार नहीं करता है। ब्रह्म सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का निर्माण

किया तथा ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त काल क्रम में सत्यदूर होने के कारण आचार्य भास्कर कुछ संशोधन तथा कुछ नये सिद्धान्तों के साथ सिद्धान्तशिरोमणि का निर्माण किया।

1.4.3.3 सूर्यपरम्परा

सूर्यसिद्धान्त का अनुपालन ग्रह तथा काल साधन आदि में जो करते है उनकी परम्परा सूर्यपरम्परा कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त के नाम से भारतीय ज्योतिष में अनेक ग्रन्थ प्रचलन में रहे। आचार्य वराह मिहिर के द्वारा संगृहीत एक सूर्यसिद्धान्त है। भटोत्पल के द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त सूर्यसिद्धान्त के अंश किसी दूसरे सूर्यसिद्धान्त के हैं। वर्तमान में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त उपरोक्त दोनों से भी भिन्न है। तथा अन्य आचार्यों की व्याख्याओं में भी सूर्यसिद्धान्त का प्रसंग है जो यहां पर प्रस्तुत तीनों सूर्यसिद्धान्तों से भिन्न माने जाते हैं। अतः सूर्यसिद्धान्त के नाम से प्रचलित होने वाले सिद्धान्त तीन से अधिक माने जाते हैं।

सूर्यांश पुरुष के द्वारा मयासुर को प्रबोधित सिद्धान्त ही सूर्यसिद्धान्त के नाम से वर्तमान में प्रसिद्ध है तथा वर्तमान में निर्मित अधिकांश पंचांग सूर्य सिद्धान्त का ही अनुसरण करते हैं।

1.4.4 बोध प्रश्न

1. क्षेत्र किसे कहते है?
2. सौर वर्ष किसे कहते है?
3. सिद्धान्त ज्योतिष में प्रमुखतः कितनी परम्परायें हैं?
4. काल को अनादि और अनन्त कौन मानते है?
5. आर्यभट ने किन तीन विषयों का उल्लेख आर्यभटीय में की हैं?

1.5 सिद्धान्त ज्योतिष का महत्त्व

गणित कालक्रिया और गोल का सामंजस्य स्थापित करना ही सिद्धान्त ज्योतिष की मुख्य प्रवृत्ति है। ये तीनों विषय आपस में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को रखते है। अर्थात् ये तीनों की युगपत् (एक साथ) स्थिति हो सकती है तथा अलग अलग इनका अस्तित्व नहीं है। काल गणित तथा गोल पर आश्रित है।

ग्रहों की स्थिति गति आदि विषय केवल काल साधन में ही नहीं बल्कि ज्योतिष के सिद्धान्त के अतिरिक्त स्कन्धों के लिये भी महत्त्वपूर्ण है। फलादेश हेतु स्पष्टग्रहों की आवश्यकता होती है तथा ग्रहों के चार (गति) के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं आदि का ज्ञान किया जाता है।

1.5.1 सिद्धान्त ज्योतिष की विशेषता

सिद्धान्त के निर्वचन से सम्बन्धित जानकारी इस इकाई के प्रारम्भ में प्राप्त किये है। सिद्धान्त का कोई एक वाक्य में अथवा एक दृष्टि में निर्वचन नहीं हो सकता है। अर्थात् काल साधन के तत्त्व को अवगत कराने की प्रक्रिया ही सिद्धान्त कहलाता है। कालतत्त्व को जानने के लिये अनेक अवयव, विषय व विभागों का परिचय प्राप्त करना होता है इसकी जानकारी इकाई के अब तक वर्णित विषय से प्राप्त होती है।

इसी सन्दर्भ में अनेक प्रकार के उदाहरणों तथा उपमानों के साथ गोल के अभाव में गणित की स्थिति का वर्णन किये है आचार्य भास्कर जो सिद्धान्त के वैशिष्ट्य को अभिवर्णित करते है।

जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिश्शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः॥

जातक (होरा) और संहिता स्कन्धों को जानकर भी जो अनेक प्रकार की युक्तियों से युक्त सिद्धान्त को नहीं जानता है वह दीवार पर खींचे गये राजा के चित्र के समान तथा लकडी के बनाये गये सिंह जैसे ज्योतिशास्त्र के विचारों से सम्बन्धित प्रश्नों में अकिंचित्कर अर्थात् कुछ भी नहीं कर पाने वाला होगा।

अर्थात् दीवार पर चित्रित राजा जिस प्रकार से शासन नहीं कर सकता, लकडी का बना सिंह जिस प्रकार से दहाड नहीं सकता उसी तरह जो सिद्धान्त नहीं जानता है वह ज्योतिषशास्त्र के विचारों से युक्त प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है।
ज्योतिषशास्त्रज्ञ बनने के लिये सिद्धान्त ज्ञान अनिवार्य है।

गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतच्यूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्नभात्युच्चकै-
र्ज्योतिःशास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः॥

राजा की सेना अश्वों से युक्त होने पर भी गरजने वाले हाथियों के अभाव में जिस प्रकार से प्रभाव हीन होती है, आम के पेड से रहित उद्यान जैसे प्रभाव हीन होता है, जिस प्रकार राह से रहित नदी की स्थिति होती है, पति से दूर रह रही स्त्री का सौन्दर्य जिस तरह किसी काम का नहीं होता है उसी तरह सिद्धान्त ज्योतिष के ज्ञान से रहित ज्योतिषशास्त्रज्ञ की स्थिति होती है।

1.5.2 गणित और गोल का अन्योन्याश्रयत्व

मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह की एकता साधन ही ग्रह स्पष्टीकरण है। मध्यम ग्रह साधन हेतु गणित का ज्ञान अपेक्षित है। गणित दो प्रकार का होता है। ग्रह की दृगुपलब्धि के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। किन्तु गणित के अभाव में गोल का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। अर्थात् गणित और गोल दोनों अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रखते है। अर्थात् गणित के बिना गोल तथा गोल के बिना गणित का ज्ञान नहीं हो सकता है।

पूर्व में ही इस विषय की जानकारी हुई है कि ग्रहस्पष्टीकरण के माध्यम से काल साधन करना ही सिद्धान्त कहलाता है। अथवा ग्रहसाधन के आधार पर काल साधन करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य है। इन दोनों का महत्त्व तथा उन दोनों की अविकल्प अध्ययन की आवश्यकता को आचार्य भास्कर इस प्रकार वर्णित किये है -

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र।।

सभी रसों से युक्त भोजन घी (आज्य) के बिना जिस तरह जमता नहीं, राजा से रहित राज्य जिस तरह से अच्छा नहीं लगता है, अच्छे वक्ता से रहित सभा जिस तरह अच्छी नहीं लगती है उसी तरह गोल की जानकारी से रहित गणितज्ञ की स्थिति होती है। अर्थात् गोलज्ञान के बिना कालसाधन में गणित का कोई उपयोग नहीं।

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयं
ते गोलाश्रणियोन्तरेण गणितं गोलोपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति।।

भास्कराचार्य की इस उक्ति में ज्योतिष शास्त्र के अनेक घटकों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्पष्ट रूप से वर्णित है। इस उक्ति में सिद्धान्त का लक्षण भी देखने को मिलता है साथ ही ज्योतिष के विभिन्न अंगों का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है।

ज्योतिष शास्त्र का मुख्य उद्देश्य आदेश है। वह आदेश काल का भी हो सकता है तथा फल का भी। फल से सम्बन्धित जो फल होता है उसका आधार लग्न ही होता है। लग्न का साधन स्पष्ट ग्रहों के बिना नहीं हो सकता है। स्पष्ट ग्रह गोल को आश्रित करते है। अर्थात् गोल के ज्ञान के अभाव में ग्रह का साधन नहीं किया जा सकता है। गोल का ज्ञान गणित के अभाव में नहीं हो सकता है। अतः जो गणित नहीं जानता है वह गोल का ज्ञाता नहीं हो सकता है। इसी उक्ति से स्पष्ट हो जाता है

कि ज्योतिष के सभी विषय एक दूसरे पर आश्रित है तथा अधिकांश आधार विषय सिद्धान्त ज्योतिष के ही है।

1.5.3 बोध प्रश्न

1. ज्योतिष का फल मूल रूप से किसे आश्रित करता है?
2. गौलाश्रयी कौन हैं?
3. गोलानभिज्ञ गणक किसके समान है?
4. स्फुटक्रिया किसे कहते है?
5. दृक्तुल्य मध्यम ग्रह को किस नाम से जाना जाता है?

1.6 सारांश

इस इकाई की अध्ययन से आप जान चुके है कि स्थान भेद के अनुसार काल का व्यवहार होता है। ज्योतिष के स्कन्धों में जिस स्कन्ध के आधार पर काल का साधन होता है उसे सिद्धान्त स्कन्ध कहते है। संक्षिप्त में आप जान चुके है कि काल साधन के लिये ग्रहों का साधन करना होता है। ग्रहों के साधन करने के लिये गणित और गोल दोनों का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल के आधार पर प्राप्त ग्रह को स्पष्ट ग्रह कहते है।

आप यह भी जान चुके है कि काल के जो अवयव है उन्ही के बराबर में क्षेत्र अर्थात् राशि चक्र का भी विभाजन किया गया है। सिद्धान्त ज्योतिष में अनेक परम्परायें प्रचलन में हैं। आप यह भी जान चुके है कि आर्य सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त तथा ब्रह्म सिद्धान्त के नाम से सिद्धान्त का तीन विधा प्रचलन में है।

इकाई के अध्ययन से आप जान चुके है कि ज्योतिष के सभी भाग एक दूसरे पर निर्भर है। अन्योन्याश्रय के इस सम्बन्ध के कारण ज्योतिष के सभी भागों में समान अधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है। मुख्यतः ज्योतिष के बाकी सभी भागों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक होता है। साथ ही आप भास्कराचार्य जैसे महान् ज्योतिर्विद के शब्दों में सिद्धान्त ज्योतिष के महत्त्व से सम्बन्धित जानकारियाँ भी प्राप्त की हैं।

1.7 बोध प्रश्नों का उत्तर

1.3.3

1. स्पष्ट ग्रह।

2. वेधादि से प्राप्त ग्रह को दृगुपलब्ध ग्रह कहते है।
3. आचार्य आर्यभट को।
4. तन्त्र ।
5. दृक् तथा गणित् को एक करने वाला

आचार्य भास्कर स्फुटक्रिया के वर्णन के सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग करते है। स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या - या दृग्गणितैक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। जो प्रक्रिया दृगुपलब्ध और गणित से प्राप्त दोनों को एक करने के लिये किया जाता है।

1.4.4

1. ग्रहों को जहाँ पहचाना जाता है, अथवा राशिचक्र को , अथवा ग्रहों की कोणीय गति को नापने के लिये कल्पित वृत्त
2. सूर्य को क्षेत्र व राशि चक्र का सम्पूर्ण भ्रमण करने के लिये जो कालावधि अपेक्षित है।
3. तीन
4. आचार्य आर्यभट
5. गणित, कालक्रिया और गोल

1.5.3

1. लग्न बल
2. ग्रह
3. आज्य रहित भोजन, राज्य हीन राजा, वक्ता से रहित सभा
4. दृगुपलब्ध तथा गणितागत को एक करने की प्रक्रिया, अथवा मध्यम तथा वेध से प्राप्त ग्रहों को एक बनाने की व तुल्यता सादन करने की प्रक्रिया।
5. स्पष्ट ग्रह

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली।
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मध्यम ग्रह का साधन कैसे किया जाता है?
2. वेध के द्वारा ग्रह कैसे प्राप्त किया जाता है?
3. काल साधन किस लिये किया जाता है?
4. काल की क्या आवश्यकता है?
5. विभिन्न ग्रहों से काल का साधन कैसे किया जाता है?

इकाई - 2 अहर्गण साधन एवं प्रकार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अहर्गण परिचय

2.3.1 अहर्गण साधन

2.3.2 विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार अहर्गण ज्ञान

2.4 मध्यम ग्रह साधन

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - अहर्गण साधन एवं प्रकार। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में अध्ययन कर लिया है।

अहर्गण गणित ज्योतिष का प्रथम इकाई है, क्योंकि अहर्गण के बिना ग्रहों का गणित करना सम्भव नहीं है। वस्तुत: अहर्गण का अर्थ है - दिनों का समूह।

अहर्गण की सिद्धि सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण तीनों ग्रन्थों के द्वारा किया जाता है। आइए इस इकाई में अहर्गण के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अहर्गण को परिभाषित कर सकेगें।
- अहर्गण की सिद्धि कर सकेगें।
- सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण तीनों ग्रन्थों के द्वारा अहर्गण को बता सकेगें।
- अहर्गण का महत्व को समझा सकेगें।

1.3 अहर्गण परिचय

सामान्यतया अहर्गण शब्द का अर्थ होता है – दिनों का समूह। संस्कृत में इसको इस प्रकार भी जान सकते है - अह्नां नाम दिनानां, गण: अर्थात् समूह: अयमेव दिनानां समूहो अहर्गण: कथ्यते। अर्थात् दिनों के समूह को 'अहर्गण' कहते है। अहर्गण के चार प्रकार हैं – सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इनमें ग्रहसाधन हेतु तथा गणितीय क्रियाकलापों के लिए सावनाऽहर्गण का प्रयोग किया जाता है।

अहर्गण साधन की आवश्यकता क्यों हैं?

अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति क्या हैं? इसको जानने के लिए अहर्गण का साधन किया जाता है। अहर्गण साधन के तीन प्रकार हैं – 1. सिद्धान्त ग्रन्थानुसार 2. करण ग्रन्थों से तथा 3. तन्त्र ग्रन्थों के द्वारा। युगादि से जहाँ अहर्गण साधन किया जाता हैं, उसका नाम **तन्त्र** है। शकादि से अहर्गण साधन की विधि **करण** ग्रन्थों में बतलायी गयी हैं तथा सृष्ट्यादि या कल्पादि से जहाँ अहर्गण साधन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। अहर्गण के बिना हम ग्रह गणित

में प्रवेश नहीं पा सकते। अत: ग्रहों का आनयन हेतु अहर्गण का ज्ञान परमावश्यक हैं।

1.1.1 अहर्गण साधन

ग्रहलाघव ग्रन्थ के अनुसार -

द्वयब्धीन्द्रो नितशक ईशहृत्फलं स्यात् चक्राख्यं रवि हतशेषकं तु युक्तम्।
चैत्राद्यै: पृथगमुत: सदृग्घ्नचक्राद् दिग्युक्तादमरफलाधिमासयुक्तम्।।
खत्रिघ्नं गततिथियुङ्निरग्रचक्रांगाशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धै:।
ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद् वै वार: स्याच्छरहृतचक्रयुग्गणोऽब्जात्।।

अहर्गण साधन विधि- इसके लिए हमें निम्न अंशों की आवश्यकता होगी। चक्र साधन, मध्यम मासगण, अधिक मासगण, मासगण, मध्यम अहर्गण, क्षयदिवस आदि।

- क्रमश: - अभीष्ट शक $-\frac{1442}{11} =$ लब्धि चक्र होगी, शेष रख लें
- मध्यम मासगण = (शेष × 12) + गत मास (इष्टमास को छोडकर बीते हुए माह)
- अधिकमास $= (\text{चक्र} \times 2) + 10 + \frac{\text{मध्यममासगण}}{33}$
- मासगण $=$ मध्यम मास $+$ अधिमासगण
- मध्यम अहर्गण $= (\text{मासगण} \times 30) + \text{गत तिथि} + \frac{\text{चक्र}}{6}$ (लब्धि)
- क्षयदिवस $=$ मध्यम अहर्गण $\div 64$
- अहर्गण $=$ मध्यम अहर्गण $-$ क्षयदिवस
- शेषवार $= \frac{(\text{चक्र} \times 5) \div \text{अहर्गण}}{7}$

चलिए अब इसका अभ्यास करते हैं-

जैसे शक 1835, श्रावण शुक्ल 12, बुधवार का अहर्गण निकालना है।

अहर्गण साधन नियमानुसार-

$1835 - 1442 = \frac{393}{11}$ लब्धि $- 35$ चक्र, शेष 08

शेष 8 $\times$ 12 $= 96 + 4 = 100$ मध्यममासगण

चैत्र से गत मास आषाढ़ तक गिनने पर 4 गत मास आए

$\frac{(35 \times 2) + 10 + 100}{33} = \frac{180}{33} = 5$ लब्धि = अधिमासगण,

और शेष 15 अनावश्यक, $100 + 5 = 105$ मासगण

$105 \times 30 = 3150 +$ गततिथि $11 + 5 = 3166$ मध्यम अहर्गण

अब अहर्गण के $\frac{3166}{64} = 49$ लब्धि क्षयदिवस, $3166 - 49 = 3117$ स्पष्ट अहर्गण।

$$\frac{\text{अहर्गण} - 373}{2520} = \text{लब्धि को दो स्थान में रखें।}$$

- प्रथम स्थान पर - लब्धि/ 360 = लब्धि × 3 + 1 = प्रथम फल
- प्रथम फल/ 7 = वर्षपति होगा।
- द्वितीय स्थान पर - लब्धि/ 30 = लब्धि × 2 +1 = द्वितीय फल
- द्वितीयफल/ 7 = मासपति होगा।

1.1.2 विभिन्न सिद्धान्तानुसार अहर्गण साधन

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार अहर्गण –

अत उर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया।
मासीकृतायुता मासै: मधुशुक्लादिभिर्गतै:।।
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्ना: सूर्यमासविभाजिता:।
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता:।।
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिता:।
लब्धोनरात्रिरहिता लंकायामार्धरात्रिक:।।

सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों में सत्ययुग के उपरान्त जितने सौरवर्ष व्यतीत हों गये हो उनका योग कर ले। योगफल इष्टकाल तक के सौर वर्षो की संख्या होगी। इसके मास बना ले अर्थात् १२ से गुणा कर ले। मासों की संख्या में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से इष्टकाल तक जितने मास व्यतीत हो गये हों, उनको भी जोड़ दो। इस संख्या को दो स्थानों पर रखे, एक को महायुग के अधिमासों की संख्या से गुणा कर महायुग के सौर मासों की संख्या से भाग दे, जो लब्धि आवे वही सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक के अधिमासों की असंख्या होगी। इस लब्धि को दूसरे स्थान में रखे हुए मासों में जोड़ दे। योगफल सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक के चान्द्र मासों की संख्या है। इसको ३० से गुणाकर चान्द्रदिन अर्थात् तिथि बना ले और इष्टकाल तक वर्तमान मास की जितनी तिथियाँ व्यतीत हों उनका योग कर ले तो सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियाँ व्यतीत हुई हैं वह ज्ञात हो जायेगी। इन तिथियों की संख्या को भो दो स्थान में रखकर एक को महायुगीय क्षय तिथियों की संख्या से गुणा कर और गुणनफल को महायुगीय तिथियों की संख्या भाग दें, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक की क्षयतिथियों की संख्या हुई। इसको दूसरे स्थान में रखी हुई तिथियों की संख्या में से घटा दे, जो शेष बचे उससे एक कम लंका की अर्द्धरात्रि तक सावन दिनों

की अहर्गण संख्या होगी।

सूर्यसिद्धान्तीय कलियुग के आरम्भ से अहर्गण साधन का उदाहरण –

दिनांक: - १३ अप्रैल २०१३, संवत् – २०७०, शक् – १९३५, वैशाखकृष्णपक्ष:, तिथि: - तृतीया, वार:-शनिवासर: अश्विन्यां मेषेचार्क: (अश्विनी नक्षत्र तथा मेष राशि में सूर्य का प्रवेश दिन), युगअधिमासा: - १५९३३३६, युगसौरमासा: - ५१८४०००, युगअवमशेष: - २५०८२२५२, युगचान्द्रदिन – १६०३०००००८०।

वर्तमान कलियुग का व्यतीत सौरमान - ५११४ सौरवर्ष। अब यहाँ सूत्र द्वारा अहर्गण साधन करते हैं -

५११४

× १२

६१३६८

+ ० – गतमास

६१३६८

अनुपात करते है - यदि युगसौरमास में युगअधिमास मिलता है तो इष्टसौरमास में क्या मिलेगा?

युगाधिमास × इष्टसौरमास

युगसौरमास

१५९३३३६ × ६१३६८

५१८४०००

= ९७७७९८४३६४८ ÷ ५१८४०००

लब्धि = १८८६

+ ६१३६८

६३२५४

× ३०

१८९७६२०

+ १७

१८९७६३७ इष्टचान्द्रतिथि

पुन:, यदि युगचान्द्रदिन में युगअवमशेष मिलता है, तो इष्ट चान्द्रतिथि में क्या मिलेगा?

२५०८२२५२ × १८९७६३७ ÷ १६०३०००००८०

= ४७५९७००९४३८५२४ ÷ १६०३०००००८०

लब्धि = २९६९२ क्षय तिथि (अवम तिथि)

१८९७६३७

- २९६७५

१८६७९६२ सावन अहर्गण।

वार ज्ञान के लिए –

१८६७९६२ ÷ ७ = लब्धि = २६६८५१, शेष = ५ + १ = ६ रविवारा से गणना करने पर शनिवार अभीष्ट वार आ जायेगा।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित अहर्गण –

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
रविगुणो गतमाससमन्वित:।।
खदहनैर्गुणितस्तिथिसंयुत:।
पृथगतोऽधिकमास समाहतात्।।
रविदिनाप्तगताधिकमासकै:
कृतदिनै: सहितो द्युगणो विधो:।
पृथगत: पठितावम संगुणाद्
विधुदिनाप्तगतावमवर्जित:।।
भवति भास्करवासरपूर्वको दिनगणो रविमध्यमसावन:।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो द्युघटिकादिनकमत्र न गृह्यते।।

अर्थात् कल्पारम्भ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को १२ से गुणा करके (गतवर्ष के रविमास प्राप्त होंगे। इनमें चैत्रारम्भ से वर्तमान वर्ष के) गतचान्द्रमास संख्या (सौरमास मान कर) युत करके तीस से गुणा करके इष्टमास की (प्रतिपदा से) गत तिथि (सौर तिथि तुल्य मान कर) युत करके इसको पृथक् स्थान पर कल्पाधिमास १५९३३०००० से गुणा करके कल्प रवि दिन १५५५२०००००००० से भाग देने से प्राप्त अधिमास संख्या के दिन बनाकर (पूर्वोक्त) अहर्गण में जोड़ दें। फिर इन प्राप्त चान्द्र दिनों को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से पृथक स्थान पर गुणा करके कल्पचान्द्र दिवस संख्या १६०२९९९०००००० से विभक्त करने से प्राप्त फल को अहर्गण में घटाने से पूर्वोक्त रविदिनगण संख्या से रविमध्यम सावन दिन संख्या प्राप्त होती है। यहाँ अधिकमास तथा दिन क्षय में प्राप्त शेष की दिन घटिकादि को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

विशेष – भास्कराचार्य जी के अनुरूप अहर्गण साधन ज्योतिष शास्त्र के सभी पूर्ववर्ति तथा परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों कहा है लेकिन भास्कराचार्य जी में विशेष बात यह है कि – वो कहते है कि इस प्रकार साधित अहर्गण मध्यम मान का है, स्फुट नहीं है। अर्थात् वास्तविक अहर्गण से यह अहर्गण संख्या भिन्न हो सकती है। इनके अतिरिक्त वटेश्वर सिद्धान्त के प्रतिपादक वटेश्वराचार्य जी ने अनेक विधियों से अहर्गण साधन अलग से 'द्युगण: विधि' अध्याय के द्वारा बतलाया है।

मकरन्दप्रकाश के अनुसार अहर्गणानयनम् –

मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के रचयिता आचार्य नारायणदैवज्ञ ने मध्यमाधिकार के आरम्भ में अहर्गण का साधन इस प्रकार बतलाया है -

नवनगेन्द्रकृशानुसमन्वितो भवति शाकगणो गतवत्सर:।
कलिमुखादथ भानुगणो गतैर्मधुसितादिकमासचयैर्युत:।।
त्रिकगत: स च खाद्रिहृदाप्तयुक् सुरहृदाप्तगताधिकमासयुक्।
खगुणसंगुणितस्तिथिसंयुत: पृथगसौ शिवसंगुणितस्तथा।।
गुणनभोधरणीधरभाजितोऽथ स च लब्ध दिनावमवर्जित:।
दिनगणो रविमध्यम सावन: सितमुखो भवतीह निशादले।।

अर्थात् इष्ट शकाब्द में ३१७९ जोड़ने से कलिगताब्द होता है। उसको १२ से गुणाकर उसमें गत चैत्र शुक्लादि चान्दमास की संख्या जोड़कर तीन स्थानों में लिखकर प्रथम स्थान में ७० का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में जोड़े, फिर उसमें ३३ से भाग देने पर लब्धि गताधिमास को तृतीय स्थान में जोड़ दें। बाद में उसको ३० से गुणाकर गत अमावस के बाद इष्ट तिथि पर्यन्त की संख्या जोड़कर दो जगह प्रथम स्थान में ७०३ का भाग देकर लब्धि अवमदिन को प्रथम स्थान में स्थित अंक में घटाने से रात्र्यर्धकालिक शुक्रवारादिक मध्यम सावनात्मक अहर्गण होता है।

विशेष – मकरन्दप्रकाश में कलियुगादि से इष्ट दिन पर्यन्त का अहर्गण साधन किया गया है। अधिमास के पश्चात् यदि इष्ट तिथि हो, तब गतमास में उसकी गणना नहीं करनी चाहिये। अधिमास में इष्ट तिथि हो, तब इष्ट तिथि की संख्या में अधिमास की तिथि भी ग्रहण होती है। कलियुग का प्रारम्भ शुक्रवार को हुआ था, अत: शुक्रवारादि से वार की गणना होती है। अहर्गण में ७ का भाग देकर शेष के अनुसार शुक्रादिवार जानना चाहिए।

मकरन्दीय अहर्गण का उदाहरण

वर्तमान शक - १९३५ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा तिथि, भौमवार का अहर्गण साधन।

इष्ट शकाब्दा: - १९३५

अत: सूत्र से –

१९३५ + ३१७९ = ५११४ = कलिगताब्द

अत: ५११४ × १२ = ६१३६८ = सौरमास

अत्र चैत्रादिगत शुक्लादि चान्द्रमाससंख्या = ३

६१३६८ + ३ = ६१३७१ - इसे तीन स्थानों पर रखना हैं।

प्रथम मान में ७० का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में जोड़ने पर -

प्रथम स्थान - ६१३७१ ÷ ७० = ८७६

द्वितीय स्थान - ६१३७१ + ८७६ = ६२२४७ इसे सुर अर्थात् ३३ अंश से भाग देकर तृतीय स्थान में जोड़ने पर –

तृतीय स्थान - ६१३७१ + १८८६ = ६३२५७

६३२५७ × ३० = १८९७६२०

गत आषाढकृष्ण अमान्तादिष्टतिथि संख्या = १६

१८९७६२० + १६ = १८९७७१०

इसे दो स्थान पर रखकर प्रथम मान में ११ से गुणा कर ७०३ से भाग देने पर – लब्धि: = २९६९३

अत: १८९७६२० – २९६९३ = १८६७९२७ इष्टदिवस का अहर्गण हुआ।

अहर्गणोसैकनिरेककरण कथनम् -

दिनगणेऽद्रिहृतेऽभिमतो यदा नहि भवेद् दिवसो दयुगुणस्तदा।

शशिविहीनयुतोऽपि च वास्तवो दिनगण: कथितो गणकोत्तमै: ।।

अहर्गण में ७ का भाग देने पर यदि अभिष्ट वार की प्राप्ति नहीं होती, तो एक जोड़ने या घटाने से अभीष्ट वार की प्राप्ति हो जाती है।

बोध प्रश्न -

1. अहर्गण शब्द का अर्थ होता है –
   क. समूह ख. दिनों का समूह ग. दिन घ. रात्रि का समूह
2. युगादि से इष्टदिन पर्यन्त जहाँ अहर्गण साधन किया जाता है, उसे क्या कहते है।
   क. सिद्धान्त ख. तन्त्र ग. करण घ. संहिता
3. ग्रहलाघव में अहर्गण साधन किस मान से किया गया है?
   क. युगादि से ख. शकादि से ग. कल्पादि से घ. सृष्ट्यादि से
4. सूर्यसिद्धान्त में अहर्गण साधन कहाँ से किया जाता है?
   क. सृष्ट्यादि से ख. शकादि से ग. युगादि से घ. कोई नहीं
5. अहर्गण साधन क्यों किया जाता है?
   क. ग्रहों की स्थिति जानने के लिए ख. नक्षत्रों को समझने के लिए ग. तारों को जानने के लिए घ. ब्रह्माण्ड को जानने के लिए
6. वार के ज्ञान के लिए अहर्गण में कितनी संख्या का भाग देते है?
   क. ५ ख.६ ग.७ घ. ८
7. अहर्गण साधन का मान क्या होता है?
   क. सौर ख. चान्द्र ग. नाक्षत्र घ. सावन

आचार्य वेंकट कृत् केतकीग्रहगणित के अनुसार अहर्गण साधन –

व्यभ्राभ्रेभकु १८०० शकनंदचन्द्रलब्धि

श्चक्राख्यारवि १२ हतशेषकं तु युक्तम्।

चैत्राद्यै: पृथगमुत: शरा प्तचक्रा
शा १० युक्तादमरलाधिमासयुक्तम्।।
खत्रि ३० घ्नं गततिथियुक् शरद्गणाभ्रां
गां ६० शोनं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धै:।
उनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद् वै
वार: स्यादगुण ३ हतचक्रयुग्गणोज्ञात्।।

अहर्गण साधक सूत्र

अभीष्टशालिवाहनशक - १८०० = वर्षगण।

वर्षगण ÷ १९ = गतचक्र।

(चक्रशेष × १२) + गतमास = सौरमास।

$$\frac{\text{सौरमास} + १० + \text{गतचक्रपञ्चमांश}}{३३} = \text{अधिमास।}$$

सौरमासा + अधिमासा = चान्द्रमासा

(चान्द्रमासा × ३०) + गततिथिगण - (वर्षगण ÷ ६०) = तिथिगण ।

तिथिगण ÷ १९ = क्षयतिथिगण ।

तिथिगण - क्षयतिथिगण = अहर्गण ।

वारज्ञानार्थंसमीकरणम् –

$$\frac{\text{अहर्गण} + (\text{चक्र} \times ३)}{७}$$

शेष की गणना बुधादिवार से होती है। शून्य आने पर उसे बुधवार के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

2.2 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया अहर्गण शब्द का अर्थ होता है – दिनों का समूह। संस्कृत में इसको इस प्रकार भी जान सकते है - अह्नां नाम दिनानां, गण: अर्थात् समूह: अयमेव दिनानां समूहो अहर्गण: कथ्यते। अर्थात् दिनों के समूह को 'अहर्गण' कहते है। अहर्गण के चार प्रकार हैं – सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इनमें ग्रहसाधन हेतु तथा गणितीय क्रियाकलापों के लिए सावनाऽहर्गण का प्रयोग किया जाता है।

अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति क्या हैं? इसको जानने के लिए अहर्गण का साधन किया जाता है। अहर्गण साधन के तीन प्रकार हैं – 1. सिद्धान्त ग्रन्थानुसार 2. करण ग्रन्थों से तथा 3. तन्त्र ग्रन्थों के द्वारा। युगादि से जहाँ अहर्गण साधन किया जाता हैं, उसका नाम **तन्त्र** है। शकादि से अहर्गण साधन की विधि **करण** ग्रन्थों में बतलायी गयी हैं तथा सृष्ट्यादि या कल्पादि से जहाँ

अहर्गण साधन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। अहर्गण के बिना हम गणित ज्योतिष में प्रवेश नहीं पा सकते। अत: ग्रहों का आनयन हेतु अहर्गण का ज्ञान परमावश्यक हैं।

2.4 पारिभाषिक शब्दावली

अहर्गण - दिनों का समूह।

सृष्ट्यादि – सृष्टि के आरम्भ से।

युगादि - युग के आरम्भ से।

शकादि – शक के आरम्भ से।

तन्त्र – जहाँ युगादि द्वारा अहर्गण साधन किया जाता है।

सिद्धान्त – सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:। जहाँ कल्पादि से अहर्गण साधन किया जाता हो।

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री/माधवप्रसाद पुरोहित।

2. सिद्धान्तशिरोमणि – पं. सत्यदेव शर्मा।

3. ज्योतिषसिद्धान्तमंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

4. केतकीग्रहगणितम् – आचार्य वेंकट विरचित।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ख

3. ख

4. क

5. क

6. ग

7. घ

2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अहर्गण साधन क्यों आवश्यक है? परिचय दीजिये।

2. ग्रहलाघव के अनुसार अहर्गण साधन कीजिये।

3. मकरन्दीय अहर्गण का साधन कीजिये।

4. सिद्धान्तशिरोमणि में कथित अहर्गण का वर्णन कीजिये।

5. सूर्यसिद्धान्त में वर्णित अहर्गण का विवेचन कीजिये।

इकाई – 3 मध्यम ग्रह साधन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मध्यम ग्रह साधन परिचय

3.4 मध्यम ग्रह साधन

3.5 सारांश

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई का शीर्षक है – मध्यम ग्रह साधन। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने सिद्धान्त ज्योतिष एवं अहर्गण साधन का ज्ञान प्राप्त कर लिया है । अब आप इस इकाई में अहर्गण से मध्यम ग्रह का साधन कैसे करते है, इसका अध्ययन करने जा रहे है।

मध्यम ग्रह का साधन के लिए पूर्व में अहर्गण साधन करना होता है। उसी अहर्गण के आधार पर मध्यम ग्रह का साधन किया जाता है। ग्रह पहले मध्यम पश्चात् स्पष्ट होता है।

आइए हम सभी मध्यम ग्रह साधन का ज्ञान करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

मध्यम ग्रह क्या है।

मध्यम ग्रह साधन का प्रयोजन क्या है।

मध्यम ग्रह साधन में अहर्गण की क्या भूमिका है।

मध्यम ग्रह साधन की विधि क्या है।

मध्यम ग्रह का आनयन कैसे करते हैं।

3.3 मध्यम ग्रह साधन

ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। ग्रहों के स्पष्ट आनयन हेतु विदित हो कि मध्यम ग्रह का साधन अहर्गण द्वारा किया जाता है। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा (उतना ही बड़ा) वृत्त बनाते हैं, जिसे प्रतिवृत्त कहते हैं। यही प्रतिवृत्त मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है।

ग्रह स्थान और वास्तविक ग्रह दोनों यदि एक ही होते तो मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह नामक भेद देखने को नहीं मिलता। किन्तु ग्रहों के भ्रमण मार्ग भिन्न-भिन्न होने के कारण, पृथ्वी से इन कक्षाओं की दूरी समान न होने के कारण, कक्षाओं के दक्षिणोत्तरान्तर में भी अधिक मात्रा में व्यत्यास होने के कारण

ग्रहों को ग्रहस्थान के रूप में देखने का अवसर नहीं मिलता हैं। ग्रहों के आधार पर काल का साधन करना है। इसके लिए नित्य गतिशील ग्रह मात्र सहयोग नहीं कर सकते है। उनके सापेक्षा स्थान का ज्ञान उनकी गणना हेतु अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी गणना की सुलभता के लिए की गयी व्यवस्था ही मध्यम ग्रह है।

मध्यम ग्रह आकाश में देखने से नहीं मिलता है। अर्थात् वह आसमान में रहता ही नहीं है। ग्रहों के भगण के आधार पर प्रतिदिन के ग्रह की औसतन गति निकाल कर उस औसतन गति के आधार पर निकले औसतन ग्रह को ही मध्यम ग्रह है। विलक्षण गति युक्त ग्रह की आसन्न स्थिति को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाला प्रयास ही मध्यम ग्रह है। मध्यम ग्रह साधन करने का मूल आधार ही भगण है।

प्रिय शिक्षार्थियों! आइए अब मध्यम ग्रह को जान लेने के पश्चात् अब उसका गणितीय साधन कैसे होता है, उसको समझने का प्रयास करते है।

ग्रहलाघव के अनुसार ग्रहों की अहर्गण गति को उनके क्षेपक में जोड़ देने से वे मध्यम बनते हैं। उदाहरण के लिए मध्यम रविबुधशुक्र का आनयन इस प्रकार कहा गया है –

स्वखनगलव हीनो द्युव्रजोऽर्कज्ञशुक्रा।
खतिथिहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशकाद्या:।।

कल्पना किया कि अहर्गण का मान यदि -१३३ है, तो

१३३ ÷ ७० = १।५४।० अंशादि

७०) १३३ (१
७०
६३×६० = ३७८०
७०)३७८०(५४
३५०
२८०
२८०
०

१३३।०।० – अंशादिक अहर्गण
– १।५४।० – अंशदिक फल
१३१ ।६ । ० शेष अंशादि मान

पुन: अहर्गण में १५० संख्या से भाग दिया।

१३३ ÷ १५० = ० कलादि फल आया।

१३१ ।६।० अंशादि रविबुधशुक्र।

तथा राश्यादि बनाने के लिए अंशादि मान में ३० से भाग देने पर

१३१ ÷ ३० = ३०) १३१(४
१२०
११ शेष

४। ११ । ० । ० राश्यादि रविबुधशुक्र हुआ।

पुन: सूर्य की ध्रुवा – ०।१।४९।११ × ४५ (चक्र) = २।२१।५३।१५

अर्हगण से उत्पन्न ग्रह का मान – ४। ११।०।०
– २।२१।५३।१५
१।१९।६।४५
सूर्य की राश्यादि क्षेपक मान + ११।१९।४१।०
१३।८।४७।४५ मध्यमरविबुधशुक्र।

१।९।४७।४५ राश्यादि मध्यमरविबुधशुक्र मान होगा।

सूर्य सिद्धान्त द्वारा मध्यम ग्रह साधन –

यथास्वभगणाभ्यस्तो दिनराशि: कुवासरै:।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्।।

प्राप्त अहर्गण में किसी ग्रह के महायुगीय भगण को गुणा कर दीजिये और गुणनफल को महायुगीय सावन दिनों से भाग दे दीजिये, जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रह के (सृष्टि के आदि से) मध्यम गति के अनुसार पूरे हुए है, ऐसा समझना चाहिये। जो शेष बचे उसको १२ से गुणा करके फिर महायुगीय सावन दिनों से गुणा करके फिर महायुगीय सावन दिनों से भाग देने से उस राशि की संख्या आयेगी जितनी राशियाँ वह ग्रह वर्तमान भगण में पूरा कर चुका है। अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर उन अंशों की संख्या निकल आयेगी जितने अंश वह ग्रह वर्तमान राशि में पूरा कर चुका है।

यहाँ त्रैराशिक अनुपात द्वारा मध्यम ग्रह साधन का सूत्र इस प्रकार है –

$$\frac{\text{कल्पग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{} = \text{एकदिवसीय मध्यम ग्रह।}$$

कल्पकुदिन

सूर्यसिद्धान्त में सभी ग्रहों का भगणमान दिया हुआ है। जैसे सूर्य, बुध एवं शुक्र का-४३२०००० , चन्द्रमा का -५७७५३३३६, मंगल का – २२९६८३२, गुरु का -३६४२२०, शनि का-१४६५६८

मध्यम सूर्य का गणितीय साधन

कल्पना किया कि अहर्गण का मान – १८६६८३५, कल्पकुदिन – १५७७९१७८२८

तथा कल्पग्रह भगण का मान - ४३२०००० । अत: पूर्व में कथित सूत्र द्वारा यह मध्यम सूर्य का साधन करते हैं -

$$\frac{४३२०००० \times १८६६८३५}{१५७७९१७८२८} \div = \frac{८०६४७२७२००००}{१५७७९१७८२८}$$

लब्धि = ५११०, शेष राशि = १५६७०९८९२०

१५६७०९८९२० × १२ ÷ १५७७९१७८२८ = १८८०५१८७०४० ÷ १५७७९१७८२८

लब्धि = ११ राशि: , शेषम् = १४४८०९०९३२

१४४८२९२९३२ × ३० ÷ १५७७९१७८२८ = ४३४४२७२७९६०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = २७ अंश: , शेषम् = ८३८९४६६०४

८३८९४६६०४ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ५०३३६७९६२४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ३१ कला, शेषं = १४२१३४३५७२

१४२१३४३५७२ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ८५२८०६१४३२०/ १५७७९१७८२८

= ५४ विकला

११ । २७ । ३१ । ५४ राश्यादि एकदिवसीय मध्यमसूर्य होगा।

इसी प्रकार अब यहाँ मध्यम चन्द्रमा का साधन करते है -

अहर्गण - १८६६८३५

कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८८१

चन्द्रमा का भगणमान – ५७७५३३३६

सूत्र से,

$$५७७५३३३६ \times १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = \frac{१०७८१५९४९०११५६०}{१५७७९१७८२८}$$

लब्धि = ६८३२७, शेष = १५५७५७७८०४

१५५७५७७८०४ × १२ / १५७७९१७८२८ = १८६९०९३३६४८/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ११ राशि, शेष – १३३३८३७५४०

१३३३८३७५४० × ३०/ १५७७९१७८२८ = ४००१५१२६२००/१५७७९१७८२८

लब्धि = २५ अंश, शेष- ५६७१७८५००

५६७१७८५०० × ६० / १५७७९१७८२८ = ३४०३०७१०००० / १५७७९१७८२८

लब्धि = २१ कला, शेषम् – ८९४४३५६१२

८९४४३५६१२ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ५३६६६१३६७२०/ १५७७९१७८२८

= ३४ विकला

इस प्रकार से ११ । २५ । २१ । ३४ राश्यादि मध्यमचन्द्र मान आया।

मध्यम भौमसाधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिनसंख्या-१५७७९१७८२८, भौम का भगणमान – २२९६८३२

सूत्रेण,

२२९६८३२ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ४२८७८०६३६६७२०

१५७७९१७८२८

लब्धि = २७१७, शेष – ६०३६२८०४४

६०३६२८०४४ × १२ / १५७७९१७८२८ = ७२४३५३६५२८/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४ राशि, शेष– ९३१८६५२१६

९३१८६५२१६ × ३० / १५७७९१७८२८ = २७९५५९५६४८०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - १७ अंश, शेष – ११३१३५३४०४

११३१३५३४०४ × ६० / १५७७९१७८२८ = ६७८८१२०४२४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४३ कला, शेष – ३०७३७६३६

३०७३७६३६ × ६० / १५७७९१७८२८ = १८४४२५८१६० / १५७७९१७८२८

= १ विकला

४।१७।४३।१ राश्यादिमान मध्यमभौम का हुआ।

मध्यम बुध शीघ्रोच्च का साधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८२८, बुधशीघ्रोच्चभगण- १७९३७०६०

सूत्रेण,

१७९३७०६० × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ३३४८५५३१४०५१००

१५७७९१७८२८

लब्धि - २१२२१, शेष– ५३७१७७११२

५३७१७७११२ × १२ / १५७७९१७८२८ = ६४४६१२५३४४/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४ राशि, शेष – १३४४५४०३२

१३४४५४०३२ × ३० / १५७७९१७८२८ = ४०३३६२०९६०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - २ अंश, शेष – ८७७७८५३०४

८७७७८५३०४ × ६० = ४६६७११८२४० / १५७७९१७८२८

लब्धि = २ कला, शेष – १५११२८२५८४

१५११२८२५८४ × ६० / १५७७९१७८२८ = ९०६७६९५५०४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ५७ विकला

४।२।२।५७ राश्यादिमान मध्यमबुधशीघ्रोच्च का होगा।

मध्यमगुरू -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिनसंख्या - १५७७९१७८२८, गुरू भगणमान –३६४२२०

सूत्रेण,

३६४२२० × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ६७९९३८६४३७००/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४३०, शेष– १४३३९७७६६०

१४३३९७७६६० × १२ = १७२०७७३१९२० / १५७७९१७८२८

लब्धि - १० राशि, शेष – १४२८५५३६४०

१४२८५५३६४० × ३० = ४२८५६६०९२००/ १५७७९१७८२८

लब्धि - २७ अंशा, शेष– २५२८२७८४४

२५२८२७८४४ × ६० = १५१६९६७०६४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ९ कला, शेष – ९६८४१०८८

९६८४१०१८८ × ६० = ५८१०४६११२८० / १५७७९१७८२८ = ३६ विकला

१०।२७।९।३६ राश्यादि मध्यमगुरु का मान आया।

मध्यम शुक्रशीघ्रोच्च –

अहर्गण-१८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या– १५७७९१७८२८, शुक्रशीघ्रोच्च भगणसंख्या – ७०२२३७६।

सूत्रेण,

७०२२३७६ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = $\frac{१३१०९६१७२९९९६०}{१५७७९१७८२८}$

लब्धि - ८३०८, शेष – २७५९८४९३६

२७५९८४९३६ × १२ = ३३११८१९२३२/ १५७०७९१७८२८ = लब्धि २ राशि

शेष – १४५९८३५७६

१४५९८३५७६ × ३० = ४३७९५०७२८०/ १५७७९१७८२८ = लब्धि २ अंश

शेष – १२२३६७१६२४

१२२३६७१६२४ × ६० = ७३४२०२९७४४० / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४६ कला शेष – ८३६०७७३५२

८३६०७७३५२ × ६० = ५०१६४६४११२० / १५७७९१७८२८ = ३१ विकला

२।२।४६1३१ राश्यादिमान मध्यमशुक्रशीघ्रोच्च होगा।

मध्यमशनि का गणितीय साधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८२८, शनि भगण – १४६५६८
सूत्र के द्वारा,
१४६५६८ × १८६६८३५ = २७३६१८२७२२८० ÷ १५७७९१७८२८ = लब्धि १७३ शेष –
= ६३८४८८०३६।
६३८४८८०३६ × १२ = ७६६१८५६४३२ / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४ राशि, शेष –
१३५०१८५१२०।
१३५०१८५१२० × ३० = ४०५०५५५३६००/ १५७७९१७८२८ = लब्धि २५ अंश, शेष –
१०५७६०७९००
१०५७६०७९०० × ६० = ६३४५६४७४००० / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४० कला , शेष –
३३९७७६०८८०
३३९७६०८८० × ६० = २०३८५६५२८०० / १५७७९१७८२८ = लब्धि १२ विकला
४। २५। ४०। १२ राश्यादिमानम् मध्यमशनि आया।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जान लिया है कि ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। ग्रहों के स्पष्ट आनयन हेतु विदित हो कि मध्यम ग्रह का साधन अहर्गण द्वारा किया जाता है। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा (उतना ही बड़ा) वृत्त बनाते हैं, जिसे प्रतिवृत्त कहते हैं। यही प्रतिवृत्त मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रह स्थान – वह स्थान जहाँ ग्रह स्थित हो
भ्रमण मार्ग – चलने वाला मार्ग
दक्षिणोत्तरान्तर – दक्षिण और उत्तर का अन्तर
भगण – 12 राशि
अहर्गण – दिनों का समूह
आसन्न – निकट

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त

सिद्धान्तशिरोमणि

ग्रहलाघव

आर्यभट्टीयम्

भारतीय ज्योतिष

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यम ग्रह किसे कहते हैं।
2. मध्यम ग्रह का साधन कैसे किया जाता है।
3. स्वकल्पित अहर्गण से मध्यम ग्रह साधन कीजिए।
4. गणित ज्योतिष में मध्यम ग्रह साधन क्यों आवश्यक है।

इकाई – 4 मन्दफल एवं शीघ्रफल ज्ञान

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मन्दफल एवं शीघ्रफल परिचय व साधन

4.4 प्राचीन रीति से चन्द्रमा एवं सूर्य के स्पष्ट स्थान

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)–302 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – मन्दफल एवं शीघ्रफल। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यम ग्रह का अध्ययन कर लिया है। अब आप स्पष्टग्रहानयन के क्रम मन्दफल एवं शीघ्रफल के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

स्पष्टग्रहानयन की प्रक्रिया में अहर्गण द्वारा मध्यम ग्रह लाकर उसमे मन्दफल एवं शीघ्रफल संस्कार किया जाता है। अत: मन्दफल एवं शीघ्रफल ग्रहस्पष्टीकरण के प्रमुख घटक है। सूर्य एवं चन्द्रमा की स्पष्टीकरण में केवल मन्दफल तथा अन्य भौमादि पंचतारा ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल दोनों की आवश्यकता होती है।

गणित ज्योतिष में स्पष्टग्रहों का आनयन प्रमुख आधार माना गया है तथा स्पष्टग्रह के साधन में मन्दफल एवं शीघ्रफल को मुख्य माना गया है। अत: आइए हम इस इकाई में मन्दफल एवं शीघ्रफल का ज्ञान प्राप्त करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- मन्दफल को परिभाषित कर सकेगें।
- मन्दफल की सिद्धि कर सकेगें।
- गणित ज्योतिष में मन्दफल एवं शीघ्रफल को बता सकेगें।
- ग्रहानयन में मन्दफल एवं शीघ्रफल की भूमिका का निरूपण कर सकेंगे।।

4.3 मन्दफल एवं शीघ्रफल परिचय व साधन

मानव पृथ्वी पर वास करते हैं। अत: वे ग्रहस्पष्टीकरण स्वस्थानाभिप्रायिक अर्थात् भू (भूकेन्द्रिक) सापेक्ष करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मन्दस्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एक ही संस्कार (मन्दफल) किया जाता है। और चूँकि उनका यह संस्कार भूकेन्द्रिक है, अत: इसके होते ही उनका भूकेन्द्रिक स्पष्टीकरण हो जाता है, पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनों की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं - 1. मन्दफल 2. शीघ्रफल।

भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार सूर्यकेन्द्रिक हैं अत: उनकी मन्दस्पष्ट स्थिति भूकेन्द्रिक न होकर केवल सूर्यकेन्द्रिक है। इनकी स्थिति को भूकेन्द्रिक बनाने के लिये हमें इनकी मन्दस्पष्ट स्थिति

में इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रिक संस्कार करना पड़ता है।

सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं में एक बिन्दु पृथ्वी से दूरतम और दूसरा उससे निकटतम है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओं के ठीक केन्द्र में न होकर उससे कुछ अलग हटकर है। वस्तुत: चन्द्र-सूर्य की कक्षायें अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभि में पृथ्वी है। इसी प्रकार भौमादि पंचताराओं की कक्षायें भी अण्डाकार वृत्त हैं। जिनकी एक नाभि में सूर्य है। इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानों से युगपत् देखने पर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्दनीच पर न हो तो, स्वकक्षा में भिन्न स्थानों पर दिख पड़ता है। इन स्थानों के प्रतीयमान अन्तर का नाम **'मन्दफल'** है।

मध्यम ग्रह में से उसका मन्दोच्च घटाने से मन्द-केन्द्र आता है। मन्द-केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों तक हो तो मन्दफल ऋण होता है। क्योकि, ग्रह इस इशा में भूवासियों को स्वस्थान से पीछे दिखलाई पड़ता है और यदि केन्द्र तुलादि ६ से ऊपर पर १२ राशियों के भीतर हो तो वह स्वरूप स्थान से आगे दिखलाई पड़ता है जिससे मन्दफल धन होता है।

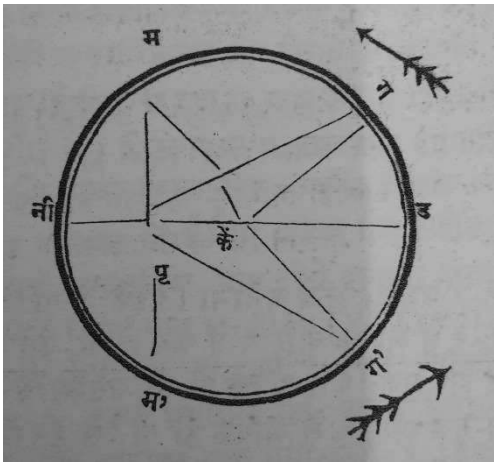

इस क्षेत्र में नी = मन्द नीच, पृ = पृथ्वी, के = कक्षा केन्द्र, उ = मन्दोच्च, ग = मन्दोच्च से ६ राशियों के भीतर ग्रह स्थान और ग = ६ से ऊपर पर १२ राशियों के भीतर ग्रह स्थान, पृगके = ग का मन्दफल ऋण और पृग के = ग का मन्दफल धन है। ग्रह बाण की दिशा में घूम रहा है। पृ से देखने पर ग बाण की पूँछ की ओर परग' उसके मुख की ओर स्वस्थान से विचलित मालूम होगा, अत: ऋण मन्दफल को मध्यम ग्रह में घटाना और धन मन्दफल को उसमें जोड़ना चाहिये। नी और उपर मन्दफल का अभाव होगा, कारण कि पृ और के दोनों स्थानों से ग्रह एक ही सीध में देख पड़ेगा। जब ग्रह नी उ रेखापर लम्ब भूत पृ गके म बिन्दु पर पहुँचेगा तो उसका परम मन्दफल होगा। म बिन्दु पर

मन्द केन्द्र कुछ अधिक ९० अंश रहता है जो चन्द्र-सूर्य के लिए सुखार्थ ९० अंश ही मान लिया जाता है।

सूर्यसिद्धान्त में मन्दफल का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

तद्गुणभुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनु: मान्दं लिप्तादिकं फलम्।।

अर्थात् स्फुट मन्दपरिधि को क्रम से भुजज्या और कोटिज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्द परिधि अंशों में हो) या १६०० से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओं में हो) भाग देने पर लब्धि क्रम से भुजफल और कोटिफल होंगी। भुजफल जिस धनु की ज्या होगी उसे ही मन्दफल कहते हैं।
इसे सूत्रात्मक रूप में इस प्रकार भी समझ सकते हैं –

$$\textbf{भुज फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुजज्या}}{३६०}$$

$$\textbf{कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटिज्या}}{३६०}$$

भुजफल जिस अंश की ज्या हो वही **मन्दफल** कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणों में ३६० उसी समय होगा जब कि मन्द परिधि अंशों में हो। यदि मन्द परिधि कलाओं में हो तो ३६० की जगह २१६०० रखना होगा।

मन्दफल की उपपत्ति –

ग्रह के मध्य और स्पष्ट स्थानों का अन्तर क्या होता है यह जानने के लिए हमारे ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गति से अनुलोम दिशा में पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है और स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर जिसके मध्य में मध्यम ग्रह रहता है, विलोम दिशा में इस प्रकार चल रहा है कि जितने समय में मध्यम ग्रह अपनी कक्षा में (कक्षावृत्त में) पूरा परिक्रमा कर लेता है, उतने ही समय में स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर अपनी परिक्रमा पूरा कर लेता है। मन्द परिधि पर परिक्रमा करते हुए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में जहाँ दिखलाई पड़ता है, उसी बिन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है। इसे आप निम्न क्षेत्र द्वारा समझ सकते हैं –

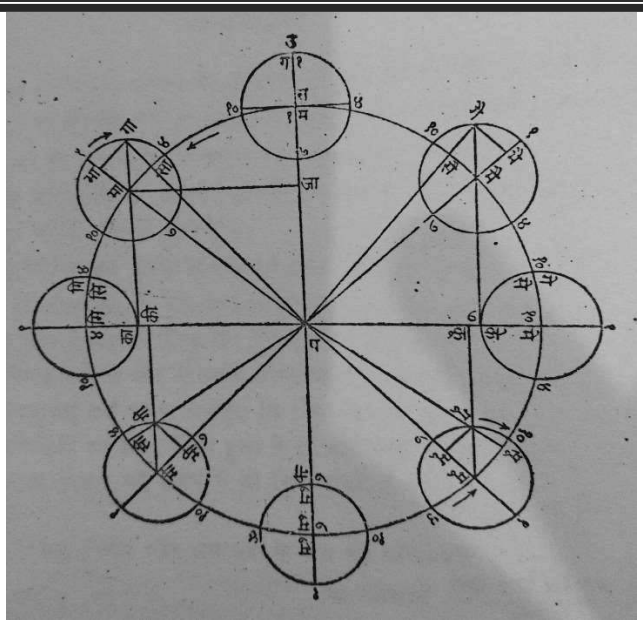

चित्र में प पृथ्वी का केन्द्र है। प को केन्द्र मानकर पम त्रिज्या से जो बड़ा वृत्त खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यम ग्रह अनुलोम दिशा में मध्यम गति से भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रह के आठ स्थान हैं। म वह स्थान है जहाँ मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अन्तर शून्य होता है। अर्थात् इसी दिशा में ग्रह का मन्दोच्च होता है। कक्षा वृत्त में इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं और इसी जगह से आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशा में तीन-तीन राशि के अन्तर पर चार पदों में बाँटा गया है। इसीलिए पहले पद के अन्त में ४, दूसरे पद के अन्त में ७ और तीसरे पद के अन्त में १० के अंक लिखे गये हैं। म,मा मि इत्यादि मध्यम ग्रह के स्थानों को मध्यम मानकर ग्रह की मन्द परिधि के मानानुसार जो छोटे-छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुट मन्द परिधि है। क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षावृत्त के विस्तार उसी अनुपात में नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपात में यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थों में दिये है। मन्द परिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियों के मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। पम, पमा, पमि इत्यादि रेखायें मन्द परिधि के दूर वाले बिन्दु पर जहाँ पहुँचती है वहाँ भी मन्द परिधि पर १ के अंक लिखे हुए हैं। यहाँ से आरम्भ करके मन्द परिधि पर तीन-तीन राशि या ९०-९० अंश के अन्तर पर विलोम दिशा में ४,७,१० के अंक लिखे गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है। यही ग्रह के मन्दोच्च का स्थान है, इसलिए वहाँ उ भी लिखा हुआ है। जितने समय में मध्यम ग्रह कक्षावृत्त पर म से मा तक जाता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंद परिधि पर

१ से गा तक जाता है, क्योंकि मध्यम ग्रह का कक्षावृत्त पर और स्पष्ट ग्रह का मंद वृत्त (मंद परिधि को मंदवृत्त भी कहते है) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखा के जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलाने वाली रेखा को मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वी के मध्य से स्पष्ट ग्रह की दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षावृत्त को सा बिन्दु पर काटता है, इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में सा बिन्दु पर ही देख पड़ता है। इसी बिन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है। सा मा धनु अथवा सा प मा कोण को मंद फल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोण को मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते है, इसलिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्र का अन्तर '**मन्दफल**' कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सूर्य एवं चन्द्रमा में कौन से संस्कार होते हैं?
   क. मन्दफल ख. शीघ्रफल ग. मन्दफल-शीघ्रफल घ. मन्दोच्च
2. भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार है?
   क. भूकेन्द्रिक ख. सूर्यकेन्द्रिक ग. चन्द्रकेन्द्रिक घ. मन्दकेन्द्रिक
3. मध्यम ग्रह में से उसका मन्दोच्च घटाने से क्या आता है?
   क. मन्द-केन्द्र ख. शीघ्रकेन्द्र ग. मन्दोच्च घ. शीघ्रोच्च
4. निम्न में मन्दफल का पर्याय है?
   क. कोटिफल ख. भुजफल ग. शीघ्रफल घ. केन्द्रफल
5. मन्द-केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों तक हो तो मन्दफल होता है।
   क. ऋण ख. धन ग. धन-ऋण घ. कोई नहीं
6. मन्दफल साधन क्यों किया जाता है?
   क. ग्रहस्पष्टीकरण के लिए ख. सूर्य-चन्द्र की स्थिति जानने के लिए ग. ग्रहों के वास्तविक व आभाषिक अन्तर जानने के लिए घ. उपयुक्त सभी।
7. प्राचीन रीति के अनुसार चन्द्रमा का परम मन्दफल कितना अंश होता है।
   क. ५ अंश ख.१० अंश ग. १५ अंश घ. २० अंश
8. ९ राशि में कितना अंश होता है?
   क. ३५० अंश ख. ३६० अंश ग. २७० अंश घ. १०८ अंश
9. सूर्य की सबसे छोटी गति कब होती है?
   क. १ दिसम्बर को ख. १ जुलाई को ग. २३ जून को घ. २१ सितम्बर को

शीघ्रफल –

शैघ्रं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवाप्त: कर्क्यादौ कोटिजं फलम्।।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिध:।
त्रिज्याऽभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम्।।
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्रमिदं स्मृतम्।
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि।।

अर्थात् यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के उपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्रकेन्द्र ३ राशि के उपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटाने पर जो लब्धि आती है, उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ देने पर और योगफल का वर्गमूल निकाले पर जो प्राप्त होता है वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पाँच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

मन्दफल और शीघ्रफल को इस प्रकार भी समझा जा सकता है –

मध्यमग्रह द्वारा स्पष्टग्रह लाने की रीति की उपपत्ति हमारे ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में परिलेख अर्थात् क्षेत्र द्वारा बतलायी गयी है। ग्रह के मध्यम स्थान और स्पष्ट स्थान में अन्तर पड़ने के कारणों से सम्बन्धी हमारे ज्योतिषियों की कल्पनाओं का ज्ञान होने के लिए उसे यहाँ लिखते हैं। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा समरूप वृत्त बनाते है। इस वृत्त का नाम 'प्रतिवृत्त' है। यही मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है। मध्यमग्रह कक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देगा वहीं उसका स्पष्टस्थान होता है।

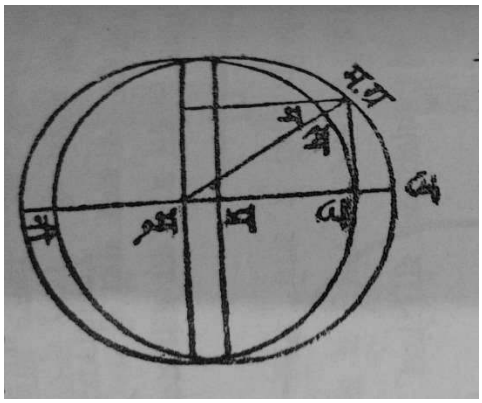

इस क्षेत्र में भूकेन्द्रवाला वृत्त कक्षावृत्त और प्र- केन्द्रवाला प्रतिवृत्त है। मग मध्यमग्रह है और तदनुसार कक्षावृत्त में भी म उसका स्थान है। प्रतिवृत्तीय म.ग्र से भू पर्यन्त जानेवाली रेखा में भूमि पर स्थिति द्रष्टा को ग्रह दिखाई देता है। इस रेखा को कर्ण कहते है। यह कर्ण कक्षावृत्त में स्पष्टस्थान में लगता है। कक्षावृत्त में यही स्पष्टग्रह दिखाई देता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रह के अन्तर म.स्प को फलसंस्कार कहते हैं। इस फल का अनुभूत परमाधिक मान परमफल या अन्त्यफल कहलाता है। प्रतिवृत्त का केन्द्र भूकेन्द्र से अन्त्यफल की भुजज्या तुल्य अन्तर पर रहता है। इस फल को '**मन्दफल**' कहते है। मध्यमग्रह में इस मन्दफल का संस्कार करने से मन्दस्पष्ट होता ग्रह आता है। सूर्य और चन्द्रमा में इस एक ही फल का संस्कार करने से वे स्पष्ट हो जाते है, परन्तु अन्य पाँच ग्रह इस प्रकार लायी हुई मन्दस्पष्ट स्थिति के अनुसार भूस्थित द्रष्टा को नहीं दिखाई देते आधुनिक सिद्धान्तानुसार यह कहना चाहिये कि सूर्यस्थित द्रष्टा को उनकी यह स्थिति दिखाई देगी। उनमें एक और शीघ्रफल नामक संस्कार करने से जो स्थिति आती है उसके अनुसार वे पृथ्वी स्थित द्रष्टा को दिखाई देते हैं। शीघ्रफल लाने के लिए शीघ्रप्रतिवृत्त की कल्पना करनी पड़ती है और मन्दस्पष्ट ग्रह को मध्यमग्रह मानकर शीघ्रफल लाया जाता है। मन्दफल और शीघ्रफल लाने की क्रियाओं को क्रमश: मन्दकर्म और शीघ्रकर्म कहते हैं।

शीघ्रकर्म का स्वरूप यह है –

मन्दकर्म में जिसे कक्षावृत्त कहते हैं उसी को शीघ्रकर्म में शीघ्रप्रतिवृत्त मानते हैं और उसके केन्द्र से परमशीघ्रफलज्या तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर दूसरा कक्षावृत्त बनाते हैं। इस शीघ्रकर्मसम्बन्धी कक्षावृत्त के मध्य में पृथ्वी को ही मानते हैं। शीघ्रप्रतिवृत्त में अपनी गति से भ्रमण करता हुआ मन्दस्पष्ट ग्रह इस शीघ्रकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देता है वहीं उसका शीघ्रस्पष्ट स्थान होता है। पृथ्वी स्थित द्रष्टा को ग्रह यहीं दिखाई देता है। कोई-कोई मन्दकक्षावृत्त को ही शीघ्रकक्षावृत्त मानकर उसके केन्द्र से शीघ्रान्त्यफलज्या तुल्य अन्तर पर कक्षावृत्ततुल्य ही शीघ्रप्रतिवृत्त बनाते हैं और मन्दकक्षावृत्त में प्रथम कृति द्वारा आये हुए मन्दस्पष्ट ग्रह को शीघ्रप्रतिवृत्त में ले जाने पर वह कक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देता है वहीं उसका स्पष्ट स्थान मानते हैं। दोनों विधियों का परिणाम समान ही होता है।

उपयुक्त क्षेत्र से यह ज्ञात होता है कि प्रतिवृत्त में भ्रमण करनेवाले ग्रह का पृथ्वी से सर्वत्र समान अन्तर नहीं रहता। ग्रह जिस समय उ बिन्दु में अर्थात् उच्च में रहता है उस समय उसका अन्तर महत्तम और नी बिन्दु अर्थात् नीच में रहने पर लघुतम होता है। यह प्रकार ग्रहों की कक्षा दीर्घवृत्ताकार मानने जैसा ही हुआ। भू इस दीर्घवृत्त का एक केन्द्र है।

परमेश्वर का मन्दशीघ्रफल सम्बन्धी परिलेख सुबोध है। क्षेत्र निर्माण के लिए इसका अध्ययन किया जा सकता है –

मूल श्लोक -

त्रिज्याकृतं कुमध्यं कक्षावृत्तं भवेत्तु तच्छैघ्रयम्।
शीघ्रदिशि तस्य केन्द्रात् शीघ्रान्त्यफलान्तरे पुन: केन्द्रम्।।
कृत्वा विलिखेद् वृत्तं शीघ्रप्रतिमण्डलाख्यमुदितमिदम्।
इदमेव भवेन्मान्दे कक्षावृत्तं पुनस्तु तत्केन्द्रात्।।
केन्द्रं कृत्वा मन्दात्यफलान्तरे वृत्तमपि च मन्ददिशि।
कुर्यात् प्रतिमण्डलमिदमुदितं मान्दं शनीज्यभूपुत्रा:।।
मान्दप्रतिमण्डलगास्तत्कक्षायां तु यत्र लक्ष्यन्ते।
तत्र हि तेषां मन्दस्फुटा: प्रदिष्टास्तथैव शैघ्रे ते।।
प्रतिमण्डले स्थिता: स्युस्ते लक्ष्यन्ते पुनस्तु शैघ्राख्ये।
कक्षावृत्ते यस्मिन् भागे तत्र स्फुटग्रहास्ते स्यु:।।
मान्दं कक्षावृत्तं प्रथमं बुधशुक्रयो: कुमध्यं स्यात्।
तत्केन्द्रान्मन्द दिशि मन्दान्त्यफलान्तरे तु मध्यं स्यात्।।
मान्दप्रतिमण्डलस्य तस्मिन् यत्र स्थितो रविस्तत्र।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं शैघ्रस्य तस्य मानमपि च गदितम्।।
शीघ्रस्ववृत्ततुल्यं तस्मिंचरत: सदा ज्ञशुक्रौ च।

अर्थात् पृथ्वी को मध्य और त्रिज्या को व्यासार्ध मानकर बनाया हुआ कक्षावृत्त ही शैघ्र (शीघ्रकर्मसम्बन्धी कक्षावृत्त) है।

इसके केन्द्र से शीघ्रदिशा में शीघ्रान्त्यफल तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर पुन: एक वृत्त का निर्माण करें। इसे शीघ्रप्रतिमण्डल कहेंगे। मन्दकर्म में यही कक्षावृत्त होता है। इसके केन्द्र से मन्ददिशा मन्दान्त्यफल तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर फिर एक वृत्त बनायें। इसे मन्दप्रतिवृत्त कहते हैं। शनि, गुरु और मंगल मन्दप्रतिवृत्त में गमन करते समय मन्दकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देते हैं वहीं उनके मन्दस्पष्ट बताये गये हैं (वे मन्दस्पष्ट शनि, गुरु और भौम के स्थान हैं)। इसी प्रकार शीघ्रप्रतिवृत्त में भी जानना चाहिये। वे शीघ्रकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देते हैं वहाँ उनका स्पष्टस्थान जानना चाहिये। बुध, शुक्र के मन्दकक्षावृत्तों का मध्य पृथ्वी है। उनके केन्द्रों से मन्दान्त्यफल तुल्य अन्तर पर मन्दप्रतिमण्डल का मध्य होता है। उसमें जहाँ सूर्य हो वहाँ शीघ्रप्रतिमण्डल का मध्य समझना चाहिये।

उसका (शीघ्रप्रतिवृत्त का) मान शीघ्रस्ववृत्त में तुल्य बताया है। बुध शुक्र सदैव उसी वृत्त में घूमते रहते हैं। नीचोच्चवृत्त नामक एक वृत्त के आधार पर फलसंस्कार की उपपत्ति की एक और रीति है। भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि के छेद्यकाधिकार में उसके विषय में लिखा है –

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत्।
नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां कुमध्यतो मध्यखगोपरिस्थाम्।।
कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे रेखायुते तुंगमिह प्रकल्प्यम्।
नीचं तथासन्नतरेऽथ तिर्यङ् नीचोच्चमध्ये रचयेच्च रेखाम्।।
नीचोच्चवृत्ते भगणांकितेऽस्मिन् मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या।।
शैघ्रयेऽनुलोमं भ्रमति स्वतुंगादारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात्।
अतो यथोक्तं मदुशीघ्रकेन्द्रं देयं निजोच्चाद् द्युचरस्तदग्रे।।

कक्षास्थित मध्यमग्रह को केन्द्र मानकर अन्त्यफलज्या तुल्य व्यासार्ध का एक वृत्त बनायें। इसे नीचोच्चवृत्त कहते हैं। भूमध्य और मध्यमग्रह में जाती हुई एक रेखा खीचींये। वह भूमध्य से अत्यधिक दूरी पर (नीचोच्च वृत्तपरिधि में) जहाँ लगे उसे उच्च और अत्यल्प दूरी पर जहाँ लगे उसे नीच जानना चाहिये। नीचोच्च के मध्य में एक तिर्यक् रेखा खीचें। नीचोच्चवृत्त की परिधि में राशि-अंशों को अंकित कर लें। मध्यमग्रह अपने-अपने उच्च से आरम्भ कर अपनी-अपनी मन्द या शीघ्र केन्द्रगति से मन्दनीचोच्चवृत्त में विलोम और शीघ्रनीचोच्चवृत्त में अनुलोम भ्रमण करते हैं, अत: उसके अनुसार अपने-अपने मन्दशीघ्र उच्च से मन्दशीघ्रकेन्द्र दो उसके आगे मन्द के आगे मन्दस्पष्ट और शीघ्र के आगे शीघ्रस्पष्ट ग्रह दिखाई देता है।

4.4 प्राचीन रीति से चन्द्रमा और सूर्य के स्पष्ट स्थान -

चन्द्रमा की सबसे कम गति वहाँ पर होती है जहाँ पर वह पृथ्वी से सबसे दूर होता है। उस स्थान को चन्द्रमा का '**मन्दोच्च**' कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा की गति जहाँ सबसे अधिक होती है, उसे '**मन्द नीच**' कहते है। मन्दोच्च से मन्दनीच तक आने में चन्द्रमा को आधे मन्द केन्द्रीय मास का समय लगता है। मन्दोच्च भी चन्द्रमा की दिशा में ही चलता है और उसके एक बार से दूसरी बार तक मन्दोच्च पर पहुँचने में जो समय लगता है उसे मन्दोच्च मास या भारतीय पद्धति में मन्दकेन्द्रीय मास कहते हैं। एक मन्दोच्च मास २७.५५४५५ दिनों का होता है। इसलिए आधे मन्दोच्च मास में १३.७७७२८ दिन हुए। मन्दोच्च पर चन्द्रमा की गति ११°। ६/३५ और मन्दनीच पर १५°। १४/३५ उपलब्ध की गई थी। अत: दोनों गतियों के अन्तर को १३.७७७ दिनों में विभक्त कर मन्दोच्च पर की चन्द्रगति में प्रतिदिन जोड़कर मन्दनीच तक की गति की गणना की जाती थी। इस प्रकार भी चन्द्रमा

की मध्यम गति १३°।१०।३५ ही प्राप्त थी। गणना करने से यह भी ज्ञात था कि मन्दोच्च मास का चौथाई अर्थात् ९० अंश तुल्य मन्दोच्च की दूरी पर चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान मध्यम चन्द्रमा से ५ अंश पीछे और मन्दोच्च से २७० अंश की दूरी पर ५ अंश आगे रहता था, इसलिए इस ५ अंश को **चन्द्रमा का परम मन्दफल** कहा जाता था।

सूर्य की भी स्पष्ट स्थिति का निर्धारण चन्द्रमा के समान ही किया गया था। सूर्य की गति जहाँ सबसे कम होती है वह स्थान (मन्दोच्च) आकाश में अत्यन्त मन्दगति से चलता है। इसलिए उसके एक बार मन्दोच्च पर पहुँचकर दूसरी बार फिर उस पर जाने के मध्य का समय लगभग एक सौर वर्ष के तुल्य ही है। फलत: सहस्रों वर्षों तक सूर्य की सबसे कम और सबसे अधिक गति आकाश में एक ही स्थान पर देखी जाती है। ३० जून या १ जुलाई को सूर्य पृथ्वी से अधिकतम ऊँचाई पर और २९-३० दिसम्बर को सबसे कम दूरी पर होता है। इसलिए १ जुलाई को सूर्य की गति सबसे छोटी और ३१ दिसम्बर को सबसे बड़ी होती है। ३०-३१ सितम्बर को इसकी गति मध्यम गति के तुल्य होगी। इसलिए १ जुलाई से ३० दिसम्बर तक सूर्य की गति प्रतिदिन बढ़ती रहती है। ३१ दिसम्बर से ३० जून तक प्रतिदिन घटती ही जाती है। वैसे फिर घटते-घटते ३१ मार्च या १ अप्रैल को मध्यम गति के बराबर हो जाती है। फलत: ३१ सितम्बर को दृश्य सूर्य मध्यम सूर्य से लगभग २ अंश पीछे तथा १ अप्रैल को मध्यम सूर्य से २ अंश आगे रहता था। सूर्य की इस स्थिति का पता लगाने के लिए ठीक आधी रात के समय दक्षिणोत्तर वृत्त पर तारों की स्थिति में १८० अंश जोड़ना होता था। गणना का आधार चित्रा का चमकीला तारा था, जो क्रान्ति वृत्त से थोड़े ही अन्तर पर था। चित्रा से १८० अंश की दूरी पर आरम्भ बिन्दु माना गया था। क्योंकि उस समय वसन्तसम्पात इस आरम्भ बिन्दु से थोड़े ही आगे था। चीन में तो चित्रा को ही गणना का आरम्भ बिन्दु माना गया था।

सूर्य की मध्यम गति हमारे वर्ष दिन संख्या ३६५.२५६३ से ३६० में भाग देने पर ५९।८।१० ज्ञात थी। सूर्य की मन्दकेन्द्र गति भी इतनी ही थी। क्योंकि रवि मन्दोच्च की वार्षिक गति भी अत्यन्त स्वल्प है। इसलिए मध्यम और स्पष्ट सूर्य के सर्वाधिक अन्तर २ अंश को वर्ष के चौथाई दिन संख्या ९१.३ से भाग देकर मध्यम सूर्य के दैनिक ह्रास-वृद्धि की एक समान संख्या प्राप्त कर ली गई। अपने मन्दोच्च स्थान के मध्यम सूर्य में प्रतिदिन इस संख्या के एक गुने, दुगुने आदि को घटाते या जोड़े जाने पर स्पष्टसूर्य बना लिया जाता था। इस विधि को चन्द्रमा में प्रयुक्त करके चन्द्रमा की स्पष्ट स्थिति बतायी जा सकती हैं। मकरन्द सारिणी आदि में इस विधि का प्रयोग हुआ है और एक बड़ी मात्रा में भारतीय पंचांग आज भी इसी विधि से बनाये जाते है। इस विधि से बने पंचांगों की तिथि नक्षत्रादि में अधिक से अधिक एक घटी का अन्तर प्राचीन रीति से साधित स्पष्ट रवि चन्द्रमा से बनाई तिथियों

और नक्षत्रों में होता है।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि मानव पृथ्वी पर वास करते हैं। अत: वे ग्रहस्पष्टीकरण स्वस्थानाभिप्रायिक अर्थात् भू (भूकेन्द्रिक) सापेक्ष करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मन्दस्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एक ही संस्कार (मन्दफल) किया जाता है। और चूँकि उनका यह संस्कार भूकेन्द्रिक है, अत: इसके होते ही उनका भूकेन्द्रिक स्पष्टीकरण हो जाता है, पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनों की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं - 1. मन्दफल 2. शीघ्रफल। भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार सूर्यकेन्द्रिक हैं अत: उनकी मन्दस्पष्ट स्थिति भूकेन्द्रिक न होकर केवल सूर्यकेन्द्रिक है। इनकी स्थिति को भूकेन्द्रिक बनाने के लिये हमें इनकी मन्दस्पष्ट स्थिति में इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रिक संस्कार करना पड़ता है। सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं में एक बिन्दु पृथ्वी से दूरतम और दूसरा उससे निकटतम है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओं के ठीक केन्द्र में न होकर उससे कुछ अलग हटकर है। वस्तुत: चन्द्र-सूर्य की कक्षायें अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभि में पृथ्वी है। इसी प्रकार भौमादि पंचताराओं की कक्षायें भी अण्डाकार वृत्त हैं। जिनकी एक नाभि में सूर्य है। इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानों से युगपत् देखने पर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्दनीच पर न हो तो, स्वकक्षा में भिन्न स्थानों पर दिख पड़ता है। इन स्थानों के प्रतीयमान अन्तर का नाम **'मन्दफल'** है। यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के उपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्रकेन्द्र ३ राशि के उपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटाने पर जो लब्धि आती है, उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ देने पर और योगफल का वर्गमूल निकाले पर जो प्राप्त होता है वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पाँच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

स्थानाभिप्रायिक – स्वस्थान के सापेक्ष

भूकेन्द्रिक – पृथ्वी को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना

सूर्यकेन्द्रिक – सूर्य को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना

मन्दफल – भुजफल जिस अंश की ज्या हो वही **मन्दफल** कहलाता है।

शीघ्रफल – त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है।

आभाषिक – देखने में लगने की स्थिति

बिम्ब – वस्तु

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. ख
5. क
6. घ
7. क
8. ग
9. ख

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मन्दफल किसे कहते है?
2. प्राचीन रीति से सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थिति कैसे बतलायी जाती थी?
3. मन्दफल साधन क्यों किया जाता है?
4. शीघ्रफल क्या है?
5. भौमादि पंचताराग्रहों में मन्दफल-शीघ्रफल संस्कार कैसे किया जाता है?
6. मन्दफल साधन की उपपत्ति बतलाइये।

खण्ड -2
ग्रहस्पष्टीकरण एवं अन्य विचार

इकाई - 1 ग्रहस्पष्टीकरण

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ग्रह परिचय

1.4 ग्रह साधन

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी.ए. ज्योतिष पाठ्यक्रम के षष्ठ सेमेस्टर से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - ग्रहस्पष्टीकरण। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यम ग्रह, मन्दफल –शीघ्रफल, उदयान्तर, देशान्तर, भुजान्तर, क्रान्ति एवं चरान्तर आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब आप सिद्धान्त गणित ज्योतिष का मुख्य आधार ग्रहस्पष्टीकरण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। यह गणित ज्योतिष का मेरूदण्ड है। इसके ज्ञानाभाव में ज्योतिष शास्त्र में प्रवेश असम्भव है।

अत: आइए हम इस इकाई में ग्रहस्पष्टीकरण के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहस्पष्टीकरण किसे कहते है? बता सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया को समझा सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण को उदाहरण द्वारा बतला सकेंगे।
- इसके महत्व का निरूपण कर सकेंगे।

1.3 ग्रहस्पष्टीकरण परिचय

ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही **'ग्रहस्पष्टीकरण'** है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर आधारित है। अत: ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिषशास्त्र का प्राण है। ग्रहों का स्पष्टीकरण गणित ज्योतिष के अन्तर्गत करते हैं। पाश्चात्य विद्वान कोपर्निकस द्वारा आविष्कृत और केप्लर, न्यूटन इत्यादिकों द्वारा दृढ़ता से स्थापित ग्रहगति के सम्प्रति प्राय: सर्वमान्य बने हुए वास्तव सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने का एक मुख्य कारण है। वह यह कि पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा

पृथ्वी की प्रदक्षिणा दीर्घवृत्त में करते हैं। अन्य ग्रहों की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने के कारण दो हैं। एक तो यह कि बुधादि पाँच ग्रह सूर्य के चारों और दीर्घवृत्त में घूमते हैं इसलिए उनके कक्षावृत्तों में मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होती है और दूसरा कारण यह है कि सूर्यसम्बन्धी यह भिन्न स्थिति हम पृथ्वी पर से देखनेवालों को और भी भिन्न दिखाई देती है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर घूमते रहने के कारण आकाश में पृथ्वी का स्थान सदा बदलता रहता है।

यद्यपि भास्कराचार्य जी ने भौमादि ग्रहों के स्पष्ट स्थानों के लिए पहले मन्दफल फिर शीघ्रफल संस्कार करने की व्यवस्था की है किन्तु केवल एक बार ही इन संस्कारों के द्वारा आकाश में ग्रहों के स्पष्ट स्थान उपलब्ध न हो सके, इसलिए इस प्रक्रिया में संशोधन स्वरूप इन फलों का दो बार संस्कार किया गया। पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उसमें मन्दफल का आधा संस्कृत कर, इस पर से फिर मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल का मध्यम में संस्कार कर उस मन्दस्पष्ट ग्रह से शीघ्र केन्द्र बनाकर तब पूरे शीघ्रफल का संस्कार उस मन्दस्पष्ट में करने पर भूदृश्य स्पष्टग्रह होता है। सूर्यसिद्धान्त में यही प्रक्रिया लिखी है।

भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की सारिणी के अनुसार असकृत् (अनेक बार) मन्दफल और शीघ्रफल का संस्कार कहा है। ग्रहगणित और उनकी आकाशीय स्थिति की समता के लिए अनेक भारतीय आचार्यों ने ग्रहवेध के द्वारा इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनमें ब्रह्मगुप्त, केशव और उनके पुत्र गणेश दैवज्ञ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रहसाधन में एक तृतीय सारणि का आश्रय लिया है। उसके अनुसार पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उस पर से मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल को मध्यम ग्रह में संस्कृत कर उस मन्दस्पष्ट से शीघ्रकेन्द्र लाकर उस पर से लाये गये शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट में करने पर स्पष्ट ग्रह होता है। यथा –

प्राङ्गमध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्।
तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये।।
द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रम्।
सर्वं च तत्र विदधीत भवेत् स्फुटो ऽसौ।।

इन विधि से साधित ग्रह आधुनिक ग्रहों से थोड़े ही अन्तरित होते है। ग्रहसाधन की इस फल संस्कार प्रणाली से सिद्ध है कि ताराग्रहों के लिए पहले शीघ्रफल संस्कार करके ही भारतीयों ने मन्दफल संस्कार का आविष्कार किया था।

सूर्यसिद्धान्त में कहे गये भौमादि (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि) पंचतारा ग्रहस्पष्टीकरण –

मूलश्लोक -

मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोभौमादीनामथोच्यते।
शैघ्रयं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्रयं चत्वार्यनुक्रमात्।।
मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रमेव च।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा मन्दफल के केवल एक संस्कार से स्पष्ट होते है, परन्तु मंगल आदि पाँच ग्रहों में शीघ्रफल का एक संस्कार करने के पीछे मन्दफल के दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्रफल का संस्कार करना होता है।

मध्यम ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटा कर शीघ्र केन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाल कर उस शीघ्रफल का आधा मध्यम ग्रह में जोड़े (यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशि से कम हो) और घटावे (यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से अधिक हो) जोड़ने या घटाने से जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है। इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से घटाकर, शेष को मन्द केन्द्र समझ कर मन्दफल बनावे। इस मन्द फल का आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है। दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से फिर घटावे और शेष को दूसरा मन्दकेन्द्र मानकर दूसरा मंदफल बनाना चाहिये। इस मन्दफल को मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटने से जो आता है वही मन्दस्पष्ट ग्रह कहलाता है। मन्द स्पष्ट ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटाकर शीघ्रकेन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफल को मन्दस्पष्ट ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो कुछ शेष आता है वही **'स्पष्टग्रह'** कहलाता है।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान जानने के लिए मन्दफल का संस्कार करने की रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तव में चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिण्ड है कि इस पर सभी ग्रहों का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गति में बहुत सी भिन्नतायें उत्पन्न हो जाती है। इसलिए आजकल छोटे-छोटे कोई ४० संस्कार करने से चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारों में पाँच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। **ग्रहस्पष्टीकरण नियम** –

शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है।

प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = मध्यम ग्रह ± शीघ्रफल प्रथम

२

मन्दोच्च – प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल है।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह –

= प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह ± $\frac{\text{मन्दफल (प्रथम संस्कृत)}}{२}$

= मध्यम ग्रह ± $\frac{\text{(प्रथम) शीघ्रफल}}{२}$ ± $\frac{\text{(प्रथम) मन्दफल}}{२}$

मन्दोच्च – दूसरा संस्कारयुक्त मध्यम ग्रह = दूसरा संस्कृत मन्दकेन्द्र जिसका मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है।

मन्दस्पष्टग्रह = मध्यमग्रह ± दूसरा संस्कृत मन्दफल।

शीघ्रोच्च – मन्द स्पष्ट ग्रह = दूसरा शीघ्रकेन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्द स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्र फल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ± दूसरा शीघ्रफल

यह तो सूर्यसिद्धान्त के शब्दों में स्पष्ट ग्रह जानने की रीति हुई। परन्तु व्यवहार में यह जटिल है। अत: महावीर प्रसाद श्रीवास्तव द्वारा बतायी गयी विधि सरल है जिसका यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ –

पहली परिभाषा मन्दोच्च – मध्यम ग्रह = मन्दकेन्द्र

दूसरी परिभाषा शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्र से जो शीघ्रफल निकलता है वह पहला शीघ्रफल है। ..... १ समीकरण

प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = मध्यम ग्रह ± $\frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}$ ..... २ समीकरण

प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र

= मन्दोच्च - प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

= मन्दोच्च – (मध्यम ग्रह) ± $\frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}$

= (मन्दोच्च - मध्यम ग्रह) ± $\frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}$

= मन्द केन्द्र ± $\frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}$ ..... ३ समीकरण

इससे प्रकट होता है कि प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए समीकरण २ की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्दकेन्द्र में पहले शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ देने से ही काम चल जायेगा। इससे जो मन्दफल बनाया जायेगा वही पहला मन्दफल या प्रथम संस्कृत मन्दफल होगा।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२} \quad \text{..... समीकरण ४}$$

दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र

= मन्दोच्च – दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मन्दोच्च} - \left(\text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२}\right)$$

(मन्दोच्च – मध्यम ग्रह)

$$= \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२}$$

$$= (\text{मन्दकेन्द्र} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}) \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२}$$

$$= \text{प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्र} = \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२} \quad \text{समीकरण ५}$$

जिससे यह सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र में पहले मन्दफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दे। इसलिए समीकरण ४ की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मन्द केन्द्र से जो मन्दफल बनाया जायेगा वही दूसरा मन्दफल होगा।

मन्दस्पष्ट ग्रह = मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ..... समीकरण ६

दूसरा शीघ्र केन्द्र = शीघ्रोच्च – मन्दस्पष्ट ग्रह

= शीघ्रोच्च - (मध्यम ग्रह) ± दूसरा मन्दफल

= शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल

= शीघ्रकेन्द्र ± दूसरा मन्दफल ..... समीकरण ७

इससे यह सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्र केन्द्र जानने के लिए, शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्दफल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण ६ की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल बनेगा वही दूसरा शीघ्र फल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्दस्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ± दूसरा शीघ्रफल ..... (८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रह में दूसरे मन्दफल को और दूसरे शीघ्रफल को बीजगणित के अनुसार योग करें अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़े और जो ऋणात्मक हो उसको घटायें। दूसरा मन्दफल और दूसरा शीघ्रफल समीकरण ५ और ७ से समझना चाहिए।

संक्षेप में आप इस प्रकार नियम को समझ सकते हैं –

1. शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर मन्दकेन्द्रों में (बीजगणित के अनुसार) जोड़ दे तो प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र आ जायेगा। इसी का मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल या पहला मन्दफल है।
2. प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्रों में पहले मन्दफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दे तो दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र आ जोयगा। इसी का मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल या दूसरा मन्दफल है।
3. शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्दफल चिह्न उलट कर जोड़ दे तो संस्कृत शीघ्र केन्द्र आयेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।
4. मध्यम ग्रह में दूसरा मन्दफल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटें जोड़ने पर स्पष्ट ग्रह आ जाता है।

ग्रहलाघवीय रीति के अनुसार स्पष्ट मंगल ग्रह का साधन –

कल्पना किया कि मध्यम चन्द्रमा के अनुसार मध्यम मंगल के राश्यादि मान - ०२।०६।०६। ४८,

मध्यम सूर्य - ११।१९।२६।५८

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरविः स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादि ग्रहलाघवीय श्लोक के अनुसार मंगल का शीघ्रफल यहाँ साधन करते हैं –

मध्यम सूर्य - ११।१९।२६।५८

मध्यम मंगल - - ०२।०६।०६।४८

०९।१३।०।१० मंगल का शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्र छः राशि से अधिक होने के कारण चक्र में से उसे घटाने पर –

१२।००।००।००

- ०९।१३।२०।१०

०२।१६।३९।५०

इसे अंशादि बनाकर पन्द्रह सं भाग देकर लब्धांकतुल्य शीघ्रफल प्राप्त होता है।

१५) ७६। ३९।५० (५ लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्क २७९ आया।

७५

१ ।३९।५० शेष।

लब्धशीघ्राङ्क से अग्रिमशीघ्राङ्कं ३२५ का अन्तर करने पर ४६ आया इसे शेष से गुणा कर १५ से भाग देने पर -

०१।३९।५० × ४६ = ७६।३२।२०

१५) ७६।३२।२० (०५

७५

०१ × ६० + ३२ = ९२

१५) ९२ । २० (०६

९०

०२ × ६० + २० = १४०

१५) १४० (०९

१३५

१५

२७९ । ००। ००

\+ ०५ ।०६।०९

२८४ । ०६ । ०९ शीघ्रफल

इसे १० से भाग देने पर - १०)२८४।०६।१९ (२८

२८०

०४ × ६० + ६ = २४६ । ०९

१०) २४६।०९ (२४

२४०

६ × ६० + ९ = ३६९

१०) ३६९ (३६ + १

३६०

यहाँ मंगल का शीघ्रफल २८।२४।३७ तथा शीघ्रफलार्द्ध १४।१२।१८ आया।

शीघ्रकेन्द्र का तुलादि छ: राशियों में होने के कारण ऋणं किया। अत: मध्यम मंगल में घटाने पर –

मध्यम मंगल का राश्यादिमान - ०२।०६।०६।४८

शीघ्रफलार्द्ध का राश्यादि मान - ००।१४।१२।२८

०१।२१।५४।३० शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत मंगल हुआ।

मंगल का मन्दफल साधन करते हैं –

मंगल का मन्दोच्चराश्यादि मान - ०४।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत मंगल - ०१।२१।५४।३०

०२।०८।०५।३० मन्दकेन्द्र।

इसे १५ से भाग देकर लब्धांकतुल्य मन्दांक ग्रहण करते है।

१५) ६८ ।०५ ३० (०४ लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्क १०९ हुआ।

६०

०८।०५।३० - शेष

लब्ध मन्दांक से अग्रिम मन्दांक का अन्तर करने पर १२४ आया। शेष में १५ से गुणा कर १५ से भाग देने पर -

०८।०५।३० × १५ = १२१। २२।३० (०८

१५) १२१ ।२२।३० (०८

१२०

०१ × ६० + २२ = ८२

१५) ८२ ।३० (०५

७५

०७ × ६० + ३० = ४५०

१५) ४५० (३०

४५०

लब्धफल को जोड़ने पर –

१०९।००।००

\+ ०८।०५।३०

११७।०५।३० शीघ्रफल।

इसे १० से भाग देने पर

१०) ११७ ।०५।३० (४२

११०

०७ × ६० + ०५ = ४२५

१०) ४२५ ।३० (४२

४२०

०५ × ६० + ३० = ३३०

१०) ३३० (३३

३३०

मंगल का मन्दफल ११। ४२।३३। मन्दकेन्द्र मेषादिषड् राशियों में होने के कारण धन संस्कार किया

मध्यम मंगल राश्यादि - ०२।०६।०६।४८

मंगल का मन्दफल - ००। ११।४२।३३

०२।१७।४९।२१ मन्दस्पष्ट मंगल हुआ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात्। यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०९।१३।२०।१०

मन्दफलराश्यादि: - ००।११।४२।३३

०९। ०१।३७।३७ मंगल का द्वितीयशीघ्रकेन्द्र

द्वितीयशीघ्रकेन्द्र छ: राशि से अधिक होने के कारण चक्र में से घटाने पर -

१२।००।००।००

- ०९।०१।३७।३७

०२।२८।२२।२३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८८।२२।२३ (५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: २७९ लब्धम्।

७५

१३।२२।२३ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३२५ अनयोरन्तरं ४६ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१३।२२।२३ × ४६ = ६१५।०९।३८

१५) ६१५।०९।२३ (४१

६१५

०० × ६० + ०९ = ०९

१५) ०९।२३ (००

× ६० + २३ = ५६३

१५) ५६३ (३७ + १

५५५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

२७९।००।००

+ ४१। ००।३८

३१०। ००।३८ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ३१० ।००।३८ (३१

३१०

०० × ६० + ०० = ००

१०) ०० ।३८ (००

× ६० + ३८ = ३८

१०) ३८ (३ + १

१०

२८

यहाँ मंगल का द्वितीयशीघ्रफल ३१।००।०४ । शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

अत: मन्दस्पष्ट मंगल का राश्यादि मान = ०२। १७। ४९। २१

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि = - ०१।०१।००।०४

०१।१६।४९।१७ स्पष्ट मंगल सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न –

1. ज्योतिष शास्त्र मुख्यतया किस पर आधारित है?
   क. नक्षत्रों पर ख. ग्रहों पर ग. राशियों पर घ. भूमण्डल पर
2. सूर्य एवं चन्द्र ग्रह के स्पष्टीकरण में किसकी आवश्यकता होती है?
   क. मन्दफल की ख. शीघ्रफल की ग. मन्दफल-शीघ्रफल की घ. कोई नहीं
3. मध्यम ग्रह में मन्दोच्च घटाने पर क्या आता है?
   क. शीघ्रकेन्द्र ख. मन्दकेन्द्र ग. प्रतिवृत्त घ. कक्षावृत्त
4. आधुनिक मतानुसार ग्रह किस वृत्त में घूमते है?
   क. दीर्घवृत्त में ख. कक्षावृत्त में ग. क्रान्तिवृत्त में घ. प्रतिवृत्त में
5. ग्रहों की कितनी प्रकार की गति होती है।
   क. ५ ख.६ ग.७ घ.८
6. भास्कराचार्य जी ने ग्रहसाधन हेतु किसकी सारिणी का उपयोग करने के लिए कहा है?
   क. ब्रह्मगुप्त की ख. मकरन्द की ग. लोग सारिणी की घ. कोई नहीं
7. ज्या-चाप से रहित ग्रहसाधन की विधि किस ग्रन्थ में उद्धृत है।
   क. ग्रहलाघव ख. सिद्धान्तशिरोमणि ग. केतकीग्रहगणित घ. सूर्यसिद्धान्त
8. भौमादि पंचताराग्रह साधन में किसकी आवश्यकता होती है?
   क. मन्दफल की ख. मन्दफल-शीघ्रफल ग. शीघ्रफल घ.शीघ्रकेन्द्र

ग्रहलाघवीय रीति से स्पष्ट बुध ग्रह का साधन -

बुधकेन्द्रराश्यादि: - ०४।०९।२३।३५

इमां लवादि कृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १२९।२३।३५ (८ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: २१२ लब्धम्।

१२०

०९।२३।३५ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं १९५ अनयोरन्तरं इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते लब्धफलं विशोध्यते तदा –

०९।२३।३५ × १७ = १५९।३९।५५

१५) १५९।३९।५५ (१०

१५०

०९ × ६० + ३९ = ५७९

१५) ५७९।५५ (३८

५७०

९ × ६० + ५५ = ५९५

१५) ५९५ (३३ +

५९५

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

२१२। ००। ००

१०। ३८। ३३

२०१। २१। २७ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) २०१।२१।२७ (२०

२००

०१ × ६० + २१ = ८१

१०) ८१।२७ (०८+१

८०

अतो बुधशीघ्र फलं २०।०८।०९। शीघ्रफलार्द्धं १०।०४। ०४ जायते। शीघ्रकेन्द्रस्य मेषादि षड्भे त्वाद् धनं स्यात्। अतो मध्यमबुधेयोज्यते तदा –

मध्यमबुधराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।१०।०४।०४

११।२९।३१।०२ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: स्यात्।

बुधस्य मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

बुधमन्दोच्चराश्यादि: - ०७।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: - ११।२९।३२।०२

०७।००।२८।५८ मन्दकेन्दम्

मन्दकेन्द्रस्य रसैर्विशोध्य: षड्भाल्पं क्रियते –

०७।००।२८।५८

०६।००।००।००

०१।००।२८।५८

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते ।

१५) ६०।२८।५८ (०४ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: २८ लब्धम् ।

६०

०।२८।५८ परिशेषं ।

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं ३३ अनयोरन्तरं इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

००।२८।५८ × ५ = ०२ ।२४।५०

१५) २ ।२४।५० (००

× ६० + २४ = १४४

१५) १४४ ।५० (०९

१३५

९ × ६० + ५० = ५९०

१५) ५९० (३९

५८५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

२८ । ०० । ००

०० । ०९ । ३९

२८ । ०९ । ३९ शीघ्रफलं ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) २८ ।०९।३९ (०२

२०

०८ × ६० + ९ =४८९

१०) ४८९ ।३९ (४८

४८०

०९ × ६० + ३९ = ४७९

१०) ४७९ (४७ + १

४७०

अतो बुधमन्दफलं ०२।४८।४८ । मन्दकेन्द्रे तुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात् ।

मध्यमबुधराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

बुधमन्दफलं - ००।०२।४८।४८

११।१६।३८।१० मन्दस्पष्टबुध: स्यात् ।

द्वितीयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यदि पूर्वं ऋणं तदा धनं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं ऋणं स्यात्। अतो इत्यत्र धनं क्रियते ।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।०९।२३।३५

मन्दफलराश्यादि: + ००।०३।१७।०२

४।१२।४०।३७ बुधस्यद्वितीयशीघ्रकेन्द्रं ।

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १३२।४०।३७ (०८ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: २१२ लब्धम् ।

१२०

१२।४०।३७ परिशेषं ।

लब्धशीघ्रङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कम् १९५ अनयोरन्तरं १७ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते ।

१२।४०।३७ × १७ = २१५ ।३०।२९

१५) २१५ ।३०।२९ (१४

२१०

५ × ६० + ३० = ३३०

१५) ३३० ।२९ (२२

३३०

०० × ६० + २९ = २९

१५) २९ (१ + १

१५

१४

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

२१२ । ०० । ००

१४ । २२ । ०२

१९७ । ३७ । ५८ शीघ्रफलं ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) १९७ ।३७।५८ (१९

१९०

०७ × ६० + ३७ =४५७

१०) ४५७ ।५८ (४५

४५०

०७ × ६० + ५८ = ४७८

१०) ४७८ (४७ + १

४७०

अतो बुध द्वितीयशीघ्रफलं १९।४५।४८ । शीघ्रकेन्द्रस्यमेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मन्दस्पष्टबुधराश्यादि: - ११।१६।३८।१०

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००। १९।४५ ।४८

००। ०६। २३ । ५८ स्पष्टबुध: ।

स्पष्ट गुरु ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण गुरोशीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

मध्यमरवि: - ११।१९।२६।५८

मध्यमगुरू: - ०४।२१।४७।५१

०६।२७।३९।०७ गुरो: शीघ्रकेन्दम्

शीघ्रकेन्द्रस्य षड्भादधिकत्वाच्छीघ्रकेन्द्रं चक्राद्विशोधयेत् –

१२।००।००।००

०६।२७।३९।०७

०५।०२।२०।५३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १५२। २०।५३ (१० लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्का: ६६ लब्धम् ।

१५०

२ ।२०।५३ परिशेषम् ।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३६ अनयोरन्तरं ३० इमा परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते ।

०२।२०।५३ × ३० = ७०।२६।३०

१५) ७०।२६।३० (०४

६०

१० × ६० + २६ = ६२६

१५) ६२६ । ३० (४१

६१५

११ × ६० + ३० = ६९०

१५) ६९० (४६

६९०

६६ । ०० । ००

- ०४ । ४१ । ४६

६१ । ११ । १४ शीघ्रफलम्

इमां इशभिर्विभज्यते तदा - १०)६१।११।१४ (०६

६०

०१ × ६० + १८ = ७८ । १४

१०) ७८।१४ (०७

७०

८ × ६० + १४ = ४९४

१०) ४९४ (४९

४९०

अतो कुज शीघ्रफलं ०६।०७।४९ शीघ्रफलार्द्ध ०३।०३।५४

शीघ्रकेन्द्रस्यतुलाभिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्। अतो मध्यमकुजाविशोध्यते तदा –

मध्यमगुरोराश्यादि: - ०४।२१।४७।५१

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।०३।०३।५४

०४।१८।४३।५७ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतगुरू: स्यात्।

गुरोर्मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

गुरूमन्दोच्चराश्यादि: - ०६।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतकुज: - ०४।१८।४३।५७

०१।११।१६।०३ मन्दकेन्दम्

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते।

१५) ४१ ।१६। ०३ (०२ लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्का: २७ लब्धम्।

३०

११।१६।०३ परिशेषं

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं ३९ अनयोरन्तरं १२ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

११।१६।०३ × १२ = १३५। १२।३६

१५) १३५ ।२१।३६ (०९

१३५

०० × ६० + १२ = १२

१५) १२ ।३६ (००

× ६० + ३६ = ७५६

१५) ७५६ (५०

७५०

लब्धफलं संयोज्यते तदा –

२७।००।००

\+ ०९।००।५०

३६।००।५० मन्दफलांक: ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा -

१०) ३६ ।००।५० (०३

३०

०६ × ६० + ०० = ३६०

१०) ३६० । ० (३६

३६०

०० × ६० + ५० = ५०

१०) ५० (०५

५०

अतो गुरोमन्दफलं ०३। ३६ । ०५ । मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमकुजराश्यादि: - ०४।२१।४७।५१

कुजमन्दफलं - ००। ०३।३६।०५

०४।२५।२३।५६ मन्दस्पष्टगुरू: स्यात् ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०६।२७।३९।०७

मन्दफलराश्यादि: - ००।०३।३६।०५

०६ । २४।०३।०२ गुरो द्वितीयशीघ्रकेन्द्रम्

द्वितीयशीघ्रकेन्द्रं षड्भादधिकत्वाच्चक्राद्विशोध्यते -

१२।००।००।००

०६।२४।०३।०२

०५।०५।५६।५८

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १५५।५६।५८ (१० लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ६६ लब्धम्।

१५०

०५।५६।५८ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३६ अनयोरन्तरं २० इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

०५।५६।५८ × २० = ११८।५९।२०

१५) ११८।५९।२० (०७

१०५

१३ × ६० + ५९ = ८३९

१५) ८३९।२० (५५

८२५

१४ × ६० + २० = ८६०

१५) ८६० (५७

८५५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

६६। ००। ००

०७। ५५। ५७

५८। ०४। ०३ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ५८।०४।०३ (०५

५०

०८ × ६० + ०४ = ४८४

१०) ४८४।०३ (४८

४८४

४ × ६० + ३ = २४३

१०) २४३ (२४

२४०

अतो गुरूद्वितीयशीघ्रफलं ०५।४८।२३। शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

मन्दस्पष्टगुरूराश्यादि: - ०४। २५। २३। ५६

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००।०५।४८।२४

०४।१९।३५।३२ स्पष्टगुरो: स्यात् ।

स्पष्ट शुक्र ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण शुक्रस्य शीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

शुक्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।२२।३७।३३

इमां लवादि कृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १४२।३७।३३ (९ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ४६१ लब्धम्।

१३५

०७।३७।३३ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ४४३ अनयोरन्तरं १८ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते लब्धफलं विशोध्यते तदा –

०७।३७।३३ × १८ = १३७।१५।५४

१५) १३७।१५।५४ (०९

१३५

०२ × ६० + १५ = १३५

१५) १३५।५४ (०९

१३५

०० × ६० + ५४ = ५४

१५) ५४ (३ + १

४५

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

४६१ । ०० । ००

०९ । ०९ । ०४

४५१ । ५० । ५६ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ४५१ ।५०।५६ (४५

४५०

०१ × ६० + ५० = ११०

१०) ११० । ५६ (०५+१

५०

अतो शुक्रशीघ्र फलं ४५।११।०६। शीघ्रफलार्द्धं २२।३५। ३३ जायते। शीघ्रकेन्द्रस्य मेषादि षड्भे त्वाद् धनं स्यात्। अतो मध्यमशुक्रेयोज्यते तदा –

मध्यमशुक्रराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।२२।३५।३३

००।१२।०२।३१ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशुक्र: स्यात्।

शुक्रस्य मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

शुक्रमन्दोच्चराश्यादि: - ०३।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: - ००।१२।३५।३३

०२।१७।२४।२७ मन्दकेन्दम्

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते ।

१५) ७७।२४।२७ (०५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: १५ लब्धम्।

७५

०२।२४।२७ परिशेषं।

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं १५ अनयोरन्तरं ०० इत्यत्र मन्दाङ्का: १५ एव स्यात्। इमां दशभिर्विभज्यते

१०) १५।००।०० (०१

१०

५ × ६० + ०० = ३००

१५) ३००। ०० (३०।०

३००

अतो शुक्रमन्दफलं ०१।३०।०० मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात्।

मध्यमशुक्रराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शुक्रमन्दफलं - ००।०१।३०।००

११।२०।५६।५८ मन्दस्पष्टशुक्र: स्यात्।

द्वितीयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात्। यदि पूर्वं ऋणं तदा धनं स्यात्। यतो हि मन्दफलं पूर्वं ऋणं स्यात्। अतो इत्यत्र धनं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।२२।३७।३३

मन्दफलराश्यादि: + ००।०१।३०।००

४।२१।०७।३३ शुक्रस्यद्वितीयशीघ्रकेन्द्रं।

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १४१।०७।३३ (०९ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्रांका: ४६१ लब्धम्।

१३५

०६।०७।३३ परिशेषं।

लब्धशीघ्रङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कम् ४४३ अनयोरन्तरं १८ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

०६।०७।३३ × १८ = ११० ।१५।५४

१५) ११० ।१५।५४ (०७

१०५

५ × ६० + १५ = ३१५

१५) ३१५ ।५४ (२१

३१५

०० × ६० + ५४ = ५४

१५) ५४ (३ + १

४५

०९

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

४६१ । ०० । ००

०७ । २१ । ०४

४५३ । ३८ । ५६ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ४५३ ।३८।५६ (४५

४५०

०३ × ६० + ३८ = २१८

१०) २१८ ।५६ (२१

२१०

०७८× ६० + ५६ = ५३६

१०) ५३६ (५३ + १

५३०

अतो शुक्र द्वितीयशीघ्रफलं ४५।२१।५४। शीघ्रकेन्द्रस्यमेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मन्दस्पष्टशुक्रराश्यादि: - ११।२०।५६।५८

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ०१। १५।२१ ।५४

०१। ०६। १८ । ५२ स्पष्टशुक्र:।

स्पष्ट शनि ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण शनिशीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

मध्यमरवि: - ११।१९।२६।५८

मध्यमशनि: - ०२।१७।१५।३१

०९।०२।११।२७ शनिशीघ्रकेन्दम्

शीघ्रकेन्द्रस्य षड्भादधिकत्वाच्छीघ्रकेन्द्रं चक्राद्विशोधयेत् –

१२।००।००।००

०९।०२।११।२७

०२।२७।४८।३३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८७। ४८।३३ (५ लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्का: ५४ लब्धम्।

७५

१२ ।४८।३३ परिशेषम्।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ५७ अनयोरन्तरं ०३ इमा परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१२।४८।३३ × ३ = ३८।२५।३९

१५) ३८।२५।३९ (०२

३०

०८ × ६० + २५ = ५०५

१५) ५०५ । ३९ (३३

४९५

१० × ६० + ३९ = ६३९

१५) ६३९ (४२ + १

६३०

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

५४ । ०० । ००

- ०२ ।३३।४३

५६ । ३३ । ४३ शीघ्राङ्कम्।

इमां इशभिर्विभज्यते तदा - १०)५६।३३।४३ (०५

५०

०६ × ६० + ३३ = ३९३ । ४३

१०) ३९३।४३ (३९
३९०
०३ × ६० + ४३ = १२३
१०) १२३ (१२
१२०
अतो कुज शीघ्रफलं ०५।३९।१२ शीघ्रफलार्द्ध ०२।४९।३६
शीघ्रकेन्द्रस्यतुलाभिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्। अतो मध्यमशनिर्विशोध्यते तदा –
मध्यमशनिराश्यादि: - ०२।१७।१५।३१
शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।०२।४९।३६
०२।१४।२५।५५ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशनि: स्यात्।
शनिर्मन्दफलं साध्यते तद्यथा –
शनिमन्दोच्चराश्यादि: - ०८।००।००।००
शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशनि: - ०२।१४।२५।५५
०५।१५।३४।०५ मन्दकेन्दम्।
०६।००।००।००
०५।१५।३४।०५
००।१४।२५।५५
इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते।
१५) १४ ।२५। ५५ (० लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्का: ०० लब्धम्।
००
१४।२५।५५ परिशेषं
लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं १९ अनयोरन्तरं १९ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते
१४।२५।५५ × १९ = २७४। १२।२५
१५) २७४ ।१२।२५ (१८
२७०
०४ × ६० + १२ = २५२
१५) २५२ ।२५ (१६
२४०
१२ × ६० + २५ = ७४५
१५) ७४५ (४९ + १
७३५

लब्धफलं संयोज्यते तदा –

००।००।००

\+ १८।१६।५०

१८।१६।५० मन्दफलांक: ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा -

१०) १८ ।१६।५० (०१

१०

०८ × ६० + १६ = ४९६

१०) ४९६ । ५० (४९

४९०

०६ × ६० + ५० = ४१०

१०) ४१० (४५

४१०

अतो शनिमन्दफलं ०१। ४९ । ४१ मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमशनिराश्यादि: - ०२।१७।१५।३१

शनिमन्दफलं - ००। ०१।४९।४१

०२।१९।०५।१२ मन्दस्पष्टशनि: स्यात् ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०९।०२।११।२७

मन्दफलराश्यादि: - ००।०१।४९।४१

०९ । ००।२१।४६ शनिद्वितीयशीघ्रकेन्द्रम्

द्वितीयशीघ्रकेन्द्रं षड्भादधिकत्वाच्चक्राद्विशोध्यते -

१२।००।००।००

०९।००।२१।४६

०२।२९।३८।१४

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८९।३८।१४ (५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ५४ लब्धम् ।

७५

१४।३८।१४ परिशेषं ।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ५७ अनयोरन्तरं ०३ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१४।३८।१४ × ३ = ४३ ।५४।४२

१५) ४३ ।५४।४२ (०२
३०
१३ × ६० + ५४ = ८३४
१५) ८३९ ।२० (५५
८२५
०९ × ६० + ४२ = ५८२
१५) ५८२ (३८ + १
५७०
१२
लब्धफलं संयोज्यते तदा -
५४ । ०० । ००
०२ । ५५ । ३९
५६ । ५५ । ३९ शीघ्रफलं ।
इमां दशभिर्विभज्यते तदा –
१०) ५६ ।५५।३९ (०५
५०
०६ × ६० + ५५ = ४१५
१०) ४१५ ।०६ (४१
४१०
५ × ६० + ३९ = ३३९
१०) ३३९ (३३
३३०
अतो शनिद्वितीयशीघ्रफलं ०५।४१।३४ । शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात् ।
मन्दस्पष्टशनिराश्यादि: - ०२। २९। ०५। १२
द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००।०५।४१।३४
०२।१३।२३।३८ स्पष्टशनि: स्यात् ।

इस प्रकार ग्रहलाघवीय रीति से भौमदि पंचताराग्रहों का गणितीय साधन किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अन्य आचार्यों ने भी स्व-स्व सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रहों का अपनी-अपनी रीति के अनुसार ग्रहसाधन किया है।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदनि उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थि ाति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही '**ग्रहस्पष्टीकरण**' है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर आधारित है। अत: ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिषशास्त्र का प्राण है। ग्रहों का स्पष्टीकरण गणित ज्योतिष के अन्तर्गत करते हैं।

पाश्चात्य विद्वान कोपर्निकस द्वारा आविष्कृत और केप्लर, न्यूटन इत्यादिकों द्वारा दृढ़ता से स्थापित ग्रहगति के सम्प्रति प्राय: सर्वमान्य बने हुए वास्तव सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने का एक मुख्य कारण है। वह यह कि पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा दीर्घवृत्त में करते हैं। अन्य ग्रहों की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने के कारण दो हैं। एक तो यह कि बुधादि पाँच ग्रह सूर्य के चारों और दीर्घवृत्त में घूमते हैं इसलिए उनके कक्षावृत्तों में मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होती है और दूसरा कारण यह है कि सूर्यसम्बन्धी यह भिन्न स्थिति हम पृथ्वी पर से देखनेवालों को और भी भिन्न दिखाई देती है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर घूमते रहने के कारण आकाश में पृथ्वी का स्थान सदा बदलता रहता है।

यद्यपि भास्कराचार्य जी ने भौमादि ग्रहों के स्पष्ट स्थानों के लिए पहले मन्दफल फिर शीघ्रफल संस्कार करने की व्यवस्था की है किन्तु केवल एक बार ही इन संस्कारों के द्वारा आकाश में ग्रहों के स्पष्ट स्थान उपलब्ध न हो सके, इसलिए इस प्रक्रिया में संशोधन स्वरूप इन फलों का दो बार संस्कार किया गया। पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उसमें मन्दफल का आधा संस्कृत कर, इस पर से फिर मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल का मध्यम में संस्कार कर उस मन्दस्पष्ट ग्रह से शीघ्र केन्द्र बनाकर तब पूरे शीघ्रफल का संस्कार उस मन्दस्पष्ट में करने पर भूदृश्य स्पष्टग्रह होता है। सूर्यसिद्धान्त में यही प्रक्रिया लिखी है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की सारिणी के अनुसार असकृत् (अनेक बार) मन्दफल और शीघ्रफल का संस्कार कहा है। ग्रहगणित और उनकी आकाशीय स्थिति की समता के लिए अनेक भारतीय आचार्यों ने ग्रहवेध के द्वारा इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनमें ब्रह्मगुप्त, केशव और उनके पुत्र गणेश दैवज्ञ का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रहसाधन में एक तृतीय सारणि का आश्रय लिया है। उसके अनुसार पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उस पर से मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल को मध्यम ग्रह में संस्कृत कर उस मन्दस्पष्ट से शीघ्रकेन्द्र लाकर उस पर से लाये गये शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट में करने पर स्पष्ट ग्रह होता है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंच तारागृह – भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि को पंचतारा ग्रह कहते है।

ग्रहस्पष्टीकरण – गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही **'ग्रहस्पष्टीकरण'** है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है।

गणितागत – गणितीय क्रिया के द्वारा आया हुआ।

वेधोपलब्ध – वेध-यन्त्रों के द्वारा वेधक्रियोपरान्त उपलब्ध।

आसन्न – सूक्ष्म के नजदीक

आभाषिक – देखने में लगने वाली स्थिति।

रेखादेशीय – लंकादेशीय। जहाँ का अक्षांश शून्य हो, उसे रेखादेश कहते है। यथा – लंकादि।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

ज्योतिष रहस्य - जगजीवन दास गुप्ता

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. क
5. घ

6. क

7. क

8. ख

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहस्पष्टीकरण किसे कहते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. ज्योतिष शास्त्र में ग्रहस्पष्टीकरण की क्या आवश्यकता है?
3. ग्रहलाघव के अनुसार स्पष्टसूर्यग्रह का साधन कीजिये?
4. गुरू एवं शुक्र ग्रह का गणितीय साधन कीजिये?
5. सूर्यसिद्धान्त में कथित ग्रहस्फुटीकरण संस्कार का विवेचन कीजिये?

इकाई - 2 ग्रहगति विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ग्रह भ्रमण

2.3.1 ग्रह किसे कहते है?

2.3.2 ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?

2.3.3 ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?

2.3.4 ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?

2.3.5 बोध प्रश्न

2.4 ग्रह गति के प्रकार

2.4.1 आठ प्रकार की ग्रह गति

2.4.2 पांच प्रकार की ग्रह की गति

2.4.3 बोध प्रश्न

2.5 ग्रह गति का साधन

2.5.1 बोध प्रश्न

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.10 पारिभाषिक शब्द

2.1 प्रस्तावना

हमने पिछले इकाइयों में अहर्गण और मध्यम ग्रह से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त की हैं। सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य कार्य काल साधन करने के लिए ग्रहों का साधन करना है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है राशि चक्र में अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति जानना। ग्रह गतिमान होने के कारण सदा उनका स्थान एक नहीं रहता है। इसी प्रकार से दूसरी इकाई में भगण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त की हैं। ग्रह अपनी अपनी गति से राशिचक्र का एक भ्रमण जितने समय के अन्तराल में पूरा करता है उतने समय को भगण काल कहते है तथा उस भ्रमण को भगण कहते हैं। अर्थात् ग्रहों की गति के कारण उत्पन्न परिक्रमाओं का नाम ही भगण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहों की गति सिद्धान्त ज्योतिष में मुख्य स्थान को प्राप्त करती है।

इस इकाई में ग्रहों की गति से सम्बन्धित विभिन्न विषयों की जानकारियाँ प्राप्त करेंगे। ग्रहों की गति के बारे में विचार करने से पहले ग्रह किस प्रकार से भ्रमण करते हैं इन बातों की स्पष्ट जानकारियाँ प्राप्त करना होता है। उसके पश्चात् ग्रह गति के प्रकारों से सम्बन्धित विवरण प्राप्त करना है। ग्रह भ्रमण से तथा ग्रह से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की गतियों से अवगत होने के पश्चात् ग्रह गति की साधन विधि विषय की स्पष्टता की दृष्टि से आवश्यक है। इस इकाई में इन तीनों विषयों को ध्यान में रखते हुए प्रथम भाग में ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ, द्वितीय भाग में ग्रहों की गति के विभिन्न प्रकारों पर विवरण तथा तीसरे भाग में ग्रह गति की साधन विधियाँ प्रस्तुत कीये गई हैं।

स्थान - स्थान पर विषय के अवबोध की दृष्टि से बोध प्रश्न, इकाई के अन्त में बोध प्रश्नों के उत्तर के साथ - साथ अभ्यास हेतु प्रश्न एवं सम्बन्धित ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

2.2 उद्देश्य

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों की विभिन्न प्रकार की गतियों के बारे में जानना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों के साधन से सम्बन्धित विविध विधियों को जानना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रह गति के विभिन्न कारणों से अवगत होना है।
- हम चारों ओर के पूरे आकाश को भ्रमण करते हुए देखते हैं। किन्तु उस आकाश के कुछ ही पिंडों का भ्रमण ज्योतिष में बताया गया है। उसका कारण जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

- विगत इकाई में जानकारी प्राप्त की है कि निश्चित समय के अन्तराल में ग्रहों के भगण निश्चित होते हैं। अर्थात् ग्रह गति निश्चित होने पर ही यह सम्भव होता है। किन्तु अभीष्ट समय का ग्रह साधन करते समय निर्देश मिलता है कि ग्रहों की गति विलक्षण होती है। इस विलक्षणता का कारण जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।
- कुल मिलाकर ग्रह कैसे भ्रमण करते हैं और उनकी कितनी प्रकार की गतियाँ होती हैं तथा उन गतियों के साधन करने का मुख्य आधार व सूत्र क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

2.3 ग्रह भ्रमण

ग्रहों का नाम प्रायः सभी सुनते हैं। प्राचीन काल में जिनको ग्रह कहते थे उनमें कुछ आधुनिक समय में ग्रहों के नाम से नहीं जाने जाते हैं तथा आधुनिक समय में कुछ और ग्रह प्राचीन सूची में जोडे गए हैं। इन दुविधाओं के बीच कुछ प्राचीन विधाओं को विज्ञान सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो कुछ आधुनिकता के आधार पर प्राचीन विचारधारा को पाखंड कहने का प्रयास करते हैं। वास्तव में दोनों विचारधाराओं की धरा एक नहीं है तथा दोनों की तुलना नहीं की जा सकती है। दोनों विषयों का उद्देश्य तथा प्राप्तव्य एक नहीं होना ही तुलना के अभाव का मुख्य कारण है। इतने कोलाहल के बीच में ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करते समय कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। अतः यहाँ पर हम विभिन्न विषयों की जानकारी प्रश्नों के माध्यम से बिन्दुवार (प्राप्त) जानने का प्रयास करेंगे।

2.3.1 ग्रह किसे कहते है?

आकाश में अनेक पिण्ड दिखाई देते हैं। सभी एक जैसे होते हैं। उनमें नग्न चक्षुओं से अन्तर पाना सम्भव नहीं होता है। किन्तु ध्यान से देखने पर पता चलता है कि कुछ टिमटिमा रहे हैं और कुछ में कोई अन्तर देखने को नहीं मिलता है। जो टिमटिमा रहे हैं उनको हम तारें कहते हैं। तारें जलते आग के गोले हैं। आग की लपटों के कारण वे टिमटिमाते नजर आते हैं। आग की ज्वाला को दूर से देखने पर उसके रंग बदलते हुये नजर आते हैं। तारें तो हजारों करोंडों मील दूर में स्थित होने के कारण केवल टिमटिमाते नजर आते हैं। जिनमें आग की लपटे नहीं है वे भी हम को प्रकाश के साथ ही नजर आते हैं। ये सभी सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित होकर हमें नजर आते हैं अर्थात् आकाश में दो प्रकार के प्रकाशपिण्ड हैं जिनमें कुछ स्वयं आग की लपटें बिछा रहे हैं तो कुछ सूर्य के प्रकाश के

कारण प्रकाशित नजर आते हैं। एक आम आदमी की भाषा में कहना है तो स्वयं प्रकाश से प्रकाशित पिण्ड तारा है तथा जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित है वह ग्रह हैं। किन्तु यह साधारण परिभाषा ज्योतिष में ग्रहण करने वाले ग्रह शब्द के लिए पर्याप्त नहीं है क्यों कि ज्योतिष उस प्रकाशात्मा सूर्य को भी ग्रह ही मानता है।

अब हम सरल रीति से ग्रह को जानने का प्रयास करते हैं। **गृह्णातीति ग्रहः**। संस्कृत में ग्रहण करने के अर्थ में जो क्रिया वाचक शब्द प्रयुक्त होता है वह है **ग्रह उपादाने**। उपरोक्त उक्ति में कहा है कि **गृह्णाति इति ग्रहः**। अर्थात् जो ग्रहण करता है वह ग्रह होता है। इससे स्पष्ट होता है कि आकाश में कुछ पिण्ड कुछ पिण्डों का ग्रहण करते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु , शुक्र , शनि ये सात आकाशीय पिण्ड दूसरे पिण्डों का ग्रहण करते हुये दिखाई देता हैं।

दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रह किसे ग्रहण करते है? आकाश में एक से अधिक तारों से कुछ आकृतियाँ नजर आती हैं। इन आकृतियों का प्राचीनों ने नामकरण किया हैं। अब इस बात को सिद्ध करना कठिन है कि उन तारा समूहों का नामकरण किसने किया है। किन्तु इस नामकरण की प्रथा प्राच्य में भी तथा पाश्चात्य में भी प्रचलन में रही है। इन्ही स्थिर तारा समूहों को नक्षत्र कहते हैं। तारों से निर्मित ये नक्षत्र वैदिक साहित्य में भी महोन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित हुए हैं तथा परम्परा में इनका महत्त्व वर्णनातीत है।

ग्रहों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि वे सदा तारों के समूह से निर्मित एक ही आकार में अर्थात् नक्षत्र में दृश्य नहीं होते हैं। वे क्रमशः पूर्व दिशा की ओर एक एक नक्षत्र को पार करते हुए आगे को चलते रहते हैं। इसकी अनुभूति निरन्तर **वेध** से प्राप्त होती है। अर्थात् सूर्यादि उपरोक्त सात आकाशीय पिण्ड एक एक नक्षत्र का ग्रहण करते हुये आगे बढते हैं। अतः **गृह्णातीति ग्रहः** इस उक्ति से नक्षत्रों को ग्रहण करने में सक्षम आकाशीय पिण्डों को ग्रह संज्ञा से व्यवहार करने का उपदेश मिलता है ।

राहु को भी ज्योतिष में एक ग्रह के रूप में स्वीकारते है। यह ग्रह आकाश में दृश्य नहीं होता है। क्योंकि इसका कोई आकार ही नहीं है। यह एक स्थान विशेष है। सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमन मार्ग के मिलन बिन्दु को ही राहु कहते है। अतः राहु को मिलाकर ज्योतिष में ग्रह आठ एवं केतु सहित नौ हैं। केतु राहु का ही अगला हिस्सा है। फलित ज्योतिष में कर्मफल को जानने की प्रक्रिया में राहु के ही इस हिस्से को केतु के नाम से व्यवहार करते है।

सन्दर्भवश यहाँ राहु और केतु को प्रदत्त ग्रहसंज्ञा के सन्दर्भ में संक्षेप में विचार करते है। राहु और केतु सूर्य चन्द्र के भ्रमण मार्गों के सम्पात बिन्दु है जिनका पात नाम से सिद्धान्त ज्योतिष में

व्यवहार होता है। सिद्धान्त ज्योतिष में राहु शब्द का व्यवहार देखने को नहीं मिलता है। राहु नाम से प्रसिद्ध यह सम्पात बिन्दु यद्यपि नहीं दिखता है किन्तु इसकी पहचान सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों से होती है।

सूर्य और चन्द्र के भ्रमण मार्गों को एक करने वाले ये बिन्दु व पात भी स्थिर नहीं होते अपितु ये विलोम गति से भ्रमण करते हैं। अर्थात् वे भगोल की पश्चिमाभिमुखी गति के साथ साथ ही चलते है। इनकी पहचान चन्द्रमा के शराभाव से की जाती है। अतः हम इनको चन्द्रमा का शराभाव स्थान भी कह सकते हैं। चन्द्रमा का शराभाव भी आकाश में एक निश्चित स्थान में नहीं होता है। राशिचक्र के जिस स्थान में यह शराभाव स्थान या सम्पात बिन्दु या पात वहीं राहु का स्थान है।

राहु का आकार न होने के कारण, दिखाई नहीं देने के कारण तथा ग्रहण में अन्धकार का कार्य करने के कारण राहु और केतु को तमोग्रह कहते हैं। प्रसंगवश इनका विचार ग्रहण विचार के सन्दर्भ में विस्तार पूर्वक किया जाएगा।

2.3.2 ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?

हमने इस ब्लाक की द्वितीय इकाई में ग्रहों के भगणों के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। उस सन्दर्भ में ग्रहों की स्थिति के बारे में भी जानकारियाँ प्राप्त की थी। उनको एक बार और स्मरण करने की आवश्यकता है। पृथ्वी के चारों ओर मानव समान दृष्टि से देख सकता है। अतः मानव को चारों ओर सभी आकाशीय पिण्ड समान दूरी में विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। इस स्थिति को भू - सापेक्ष स्थिति कहते हैं।

भूसापेक्ष सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर पूर्व की गति से चलते हैं। अर्थात् ग्रह पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर एक पथ में चलते हुए दिखाई देते हैं। उसी पथ को हम राशिचक्र कहते हैं। उसी पथ में दर्शन देने वाले अनेक तारों से उत्पन्न विभिन्न आकारों को हम ने नक्षत्र संज्ञा दी है। उन नक्षत्रों से उत्पन्न विभिन्न समुदायों को राशि संज्ञा दी गई है। ग्रह, उन राशियों को पार करते हुए अथवा ग्रहण करते हुये आगे बढते हैं।

संक्षिप्त में बताया जाए तो पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्ताकार कक्षा में राशियाँ स्थित हैं अथवा पृथ्वी से दृश्य है उसी राशिचक्र संज्ञक सूर्यभ्रमण मार्ग में ग्रह चलते हुए दिखाई देते हैं। अर्थात् ग्रह गति भूमि की दृष्टि से राशिचक्र में नापी जाती है।

2.3.3 ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?

इस विशाल विश्व में कोई भी पिण्ड स्थिर नहीं है। उस अनन्त विश्व में कब क्या हो रहा है अथवा किसके साथ क्या होगा इत्यादि प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्त ज्योतिष में नहीं मिलते हैं। उसका

एक मात्र कारण है सिद्धान्त ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य काल का साधन करना है। भूमि के अभिप्राय से काल गणना करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति केवल ग्रहों की स्थिति से ही सम्भव है। अतः भूमि के अभिप्राय से ग्रहों में जो हाव भाव उत्पन्न होते हैं उनका ही वर्णन सिद्धान्त ज्योतिष का कार्य है।

इस प्रस्तुति का अर्थ यह भी नहीं है कि आचार्यों को विश्व की जानकारी नहीं थी। यदि नहीं होती तो वे वैश्विक पदार्थों एवं पिण्डों का वर्णन भूसापेक्ष नहीं कर पाते। यहाँ विचारणीय विषय विश्व नहीं है अपितु ग्रहसाधन है। ग्रह भी वैदिक कर्माचरण के लिए भूसापेक्ष ही अपेक्षित हैं।

सम्पूर्ण विश्व पश्चिम की ओर चल रहा है। विश्व के साथ विश्व के अंग भगोल, भचक्र, राशिचक्र, उसमें स्थित ग्रह आदि सभी अत्यन्त वेग से पश्चिम की ओर भ्रमण कर रहे हैं। उनके भ्रमण का मुख्य कारण शास्त्र में प्रवह नामक वायु बताया गया है। उस प्रवह नामक वायु के अत्यन्त वेग से प्रेरित सभी आकाशीय पिण्ड पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर अनवरत चल रहे हैं तथा वे सभी पृथ्वी की परिक्रमा लगभग 60 घटी के समय में कर लेते हैं। यह साठ घटी आज के चौबीस घण्टे के बराबर है।

नक्षत्रों के साथ साथ पश्चिम दिशा की ओर चलने वाले ग्रह अल्पगति से पूर्व की ओर भी खिसकते हैं। इस बात को सूर्यसिद्धान्त में इस प्रकार से प्रस्तुत करते है -

पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैस्सततं ग्रहाः।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः।।

इस श्लोक का पदच्छेद इस प्रकार से किया जा सकता है । पश्चात् व्रजन्तः अतिजवात् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः जीयमानाः तु लम्बन्ते तुल्यं एव स्वमार्गगाः।

इन पदों का अन्वय इस प्रकार से किया जा सकता है। स्वमार्गगाः ग्रहाः नक्षत्रैः सततम् अतिजवात् पश्चात् व्रजन्तः जीयमानाः इव तुल्यम् एव लम्बन्ते।

स्वमार्गगाः (अपने अपने मार्गों में चलने वाले) ग्रहाः (ग्रह) नक्षत्रैः (नक्षत्रों के साथ) सततं(सदा, अनवरत) अतिजवात् (अति वेग से) पश्चात् (पश्चिम की ओर) व्रजन्तः (चलते हुए) जीयमानाः (जीता हुआ) इव (जैसे) तुल्यं एव (समान ही) लम्बन्ते (लम्बित होते है या खिसकते है)

आचार्य गण इस आकाशीय दृश्य को समझाने के लिए प्रायः कुलाल चक्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कुलाल चक्र के साथ साथ दो पहियाँ वाहन का पहिया भी उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। दोनों उदाहरणों को संक्षेप में अनुभूत करते है। कुलाल चक्र उस चक्र को कहते है जिस पर कुम्हार घडा बनाता है। चक्र में एक स्थान में छोटा से खुदरा स्थान होता है जहाँ पर कुम्हार

लकडी के सहारे चक्र को घुमाता है और चक्र के बीच में रखी मिट्टी को अपने कलाकारी हाथों से घडे इत्यादि का रूप देता है।

कुलाल चक्र में जहाँ पर लकडी को फसाने के लिए स्थान है उसे आप तारा या राशि या राशि चक्र का कोई भाग समझ सकते हैं। कुम्हार अत्यन्त वेग से जब चक्र को चलाता है तो उस चक्र में स्थित वह स्थान भी घूम जाता है। किन्तु चक्र के ऊपर उस प्रत्येक स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अब मान लीजिये जब कुम्हार चक्र चलाने वाला था उसी समय एक चींटी उस चक्र पर थी। चक्र जब जोर से चला तो चींटी ने कसकर चक्र को पकड लिया। अब जिस ओर चक्र चल रहा है उस दिशा में चक्र के साथ लकडी फसाने वाला स्थान जैसे घूम रहा है उसी तरह चींटी भी घूम रही है किन्तु साथ में वह उसकी विपरीत दिशा में धीरे धीरे खिसकने का प्रयास भी कर रही है। चक्र जब रुका तो चीटी चक्र की घूमने की विपरीत दिशा में कुछ दूर खिसक चुकी थी। अर्थात् चींटी चक्र के साथ साथ चक्र जितने चक्कर मारे उतने तो मारे ही और उसने विपरीत दिशा में चलकर अपना स्थान भी बदल दिया। यहाँ पर चक्र के साथ चींटी की घूमने में कोई विशेषता नहीं है। (क्यों कि चक्र के घूमने के कारण चक्र के ऊपर का प्रत्येक स्थान भी घूम ही रहा था।) किन्तु किसी भी स्थान की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जैसा कि चींटी के विषय में हुआ।

इसी प्रकार से दो पहियाँ वाहन या साईकल के पहिये का भी उदाहरण ले सकते हैं। जब साईकल का पहिया चलता है तो उसमें लगी सारी तिल्लियां पहिये के साथ घूमती हैं। किन्तु किसी भी तिल्ली के स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

ये दोनों उदाहरण ऊपर प्रदत्त सूर्यसिद्धान्त के वचनों को स्पष्ट करने में पर्याप्त है। प्रवह नामक वायु के कारण अत्यन्त वेग या गति से घूमने वाले ब्रह्माण्ड के साथ साथ राशि चक्र और उस में स्थिति तारों राशियाँ आदि सभी घूम लेते है। किन्तु इस प्रकार के घूमने व भ्रमण में उनके स्थानों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अर्थात् वे जहाँ है वहीं पर रहते है। किन्तु उनके साथ साथ चलने वाले ग्रह उस दिशा की विरुद्ध दिशा में भी खिसक कर राशिचक्र में अपने
अपने स्थान में परिवर्तन कर देते है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है।

अत्यन्त वेग से 60 घटी में उत्पन्न गति पर कोई ध्यान नहीं दे सकता है ब्रह्माण्ड के प्रत्येक स्थान का उतना बराबर का भ्रमण होने के कारण। किन्तु उसमें पूर्व की ओर ग्रह अपने स्थान में जो परिवर्तन कर चुका हैं वह स्पष्ट रूप से नजर आ जाता है। यही ग्रहों की गति है। इसी गति के कारण तथा इस गति के आधार पर राशियों को या नक्षत्रों को क्रमशः ग्रहण करने के कारण उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह संज्ञा दी गई है। अत एव भूमि के अभिप्राय से भूमि के चारों ओर भ्रमण करने वाले

सूर्य तथा चन्द्र भी उसी परिभाषा के तहत भारतीय ज्योतिष में ग्रह के रूप में स्वीकारे गए हैं। इनका आज के समय में ग्रहों के नाम से व्यवहृत ग्रहों से कोई लेना देना नहीं हैं। आज का जो ग्रहों का व्यवहार है उनके उद्देश्य में तथा भारतीय ज्योतिष में जिनको ग्रह संज्ञा दी गई है उनके उद्देश्यों में परिपूर्ण रूप से अन्तर है। अतः स्वतन्त्र अस्तित्व होने के कारण दोनों विधाओं की कोई तुलना भी नहीं हो सकती है।

2.3.4 ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः ग्रहाणां गतिहेतवः।।

यह श्लोक भी सूर्यसिद्धान्त से ही है। भगण राशिचक्र को कहा जाता है। उस राशि चक्र में शीघ्रोच्च मन्दोच्च और पात नामक तीन स्थान हैं। वे सभी ग्रहों के लिए अलग अलग है। उन स्थानों का कोई स्वरूप नहीं है इसलिए उनको अदृश्य रूप कहते हैं। ये तीनों ग्रहों के गति के हेतु अर्थात् कारक है।

श्लोक में प्रत्येक पद का अर्थ जानने का प्रयास करते है। अदृश्यरूपाः - जिनका दृश्य रूप नहीं हैं, कालस्य मूर्तयः - काल की मूर्तियाँ है, भगणाश्रिताः - भगण को आश्रित किए हुए हैं, शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः - शीघ्रोच्च मन्दोच्च पात आख्य (संज्ञक) है, ग्रहाणां - ग्रहों के , गतिहेतवः - गतिकारक हैं।

क्रम रहित इन पदों के अर्थ भी श्लोक के तात्पर्य को स्पष्ट करने में समर्थ है।

- **उच्च** -

जिस बिन्दु को प्राप्त कर ग्रह भूकेन्द्र से अत्यन्त दूर होता है उस बिन्दु का नाम उच्च है। अर्थात् ग्रह भ्रमण मार्ग में या ग्रह कक्षा में भूकेन्द्र से दूरतम स्थान को उच्च कहते हैं। यह उच्च भी दो प्रकार का होता है।

1. मन्दोच्च
2. शीघ्रोच्च

- **मन्दोच्च -**

यह बात तो सर्व विदित है कि ग्रह पृथ्वी की मात्र परिक्रमा नहीं करते हैं। पृथ्वी के सापेक्ष ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते नजर आते हैं। भले वे कभी दूर और कभी नजदीक आते हैं किन्तु इसका आभास पृथ्वी से नहीं हो पाता है। ग्रह हमेशा एक ही दूरी में राशि चक्र में भूवासियों को नजर

आते हैं। किन्तु जब उन ग्रहों को हम औसतन गति के आधार पर स्पष्ट करना चाहते हैं तो हमें इन जानकारियों की आवश्यकता पड जाती है।

प्रथम इकाई में हमने जानकारी प्राप्त की थी कि काल साधन के लिए ग्रहों को स्पष्ट करना अपेक्षित है। उसी सन्दर्भ में यह भी जानकारी प्राप्त की थी कि गणितागत ग्रह और दृगुपलब्ध ग्रह की एकता को ही स्पष्ट कहते हैं। साथ में यह भी जानकारी प्राप्त की थी कि गणितागत और स्पष्ट को एक करने के लिए किया जाने वाला प्रयास ही ग्रह स्पष्टीकरण है और सिद्धान्त ज्योतिष का यही परम उद्देश्य है।

उसी स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में ग्रह की गति में अन्तर उत्पन्न करने वाला जो प्रथम कारक पाया गया था वह ग्रह में मन्द मन्द या थोडा थोडा अन्तर उत्पन्न करता है। उस मन्द अन्तर को उत्पन्न करने वाला प्रधान कारक व स्थान होने के कारण इस उच्च को मन्दोच्च कहते हैं।

- **शीघ्रोच्च -**

मन्दोच्च से ग्रह में उत्पन्न होने वाले प्रभाव को पहचानने के बाद पता चला कि अभी भी गणितागत और दृश्य ग्रह एक स्थान में नहीं प्राप्त हो रहे हैं। तब पता चला कि मन्दोच्च से भी एक और दूरतर बिन्दु ग्रह के मार्ग में उपस्थित है। यह बिन्दु ग्रह की गति में मन्दोच्च की अपेक्षा अधिक अन्तर को उत्पन्न करता है। अन्तर भी त्वरित गति से उत्पन्न होता है। इसी लक्षण के कारण इसे शीघ्रोच्च संज्ञा दी गई है।

ध्यातव्य है कि सूर्य और चन्द्रमा का शीघ्रोच्च नहीं है। उससे पहले भी ध्यान में यह बात रखनी चाहिए कि उपरोक्त परिभाषा के अन्तर्गत भारतीय ज्योतिष में सूर्य और चन्द्रमा ग्रह कहलाते है। सूर्य और चन्द्रमा की सापेक्ष गति पृथ्वी के चारों ओर होने के कारण तथा उन पर अतिरिक्त प्रभाव अन्य किसी स्थान से न पडने के कारण इनके लिए एक ही उच्च प्रकल्पित है तथा वह मन्दोच्च ही है।

- पात

ग्रहों के विमण्डल और क्रान्ति वृत्त का जहाँ मिलन होता है उसे पात कहते हैं। इस मिलन बिन्दु को प्राप्त करने के बाद ग्रह क्रान्ति वृत्त से या तो दक्षिण की ओर चले जाते हैं या उत्तर की ओर। उत्तर तथा दक्षिण की ओर चलने से ग्रहों में जो दक्षिणोत्तरान्तर उत्पन्न होता है उसे विक्षेप कहते हैं। विक्षेप का मूल कारक पात ही है।

- गति के कारक

उच्च और पात को ग्रहों की गति का कारक माना गया है। उनमें उच्च ग्रह की पूर्वाभिप्रायिक गति को प्रभावित करते हैं तथा पात दक्षिणोत्तर गति को। उच्च ग्रह को अपनी ओर आकर्षित करता है। अर्थात् उच्च की ओर ग्रह तेजी से चलता है। उच्च को प्राप्त करने के बाद ग्रह की गति धीमी हो जाती है। इसका कारण उच्च की आकर्षणशक्ति है। उच्च की ओर जाते हुए ग्रह में उच्च के प्रति आकर्षण के कारण गति बढती है और उच्च को प्राप्त करने के बाद ग्रह जब आगे बढने का प्रयास करता है तो उच्च के आकर्षण के कारण तेजी से नहीं चल पाता है।

पात को प्राप्त करने के बाद ग्रह या तो उत्तर या दक्षिण की ओर चलना प्रारम्भ करता है। यह दक्षिणोत्तर गति ग्रह को आसमान में पहचानने के लिए तथा उदयास्त आदि विभिन्न प्रक्रियाओं में आवश्यक होती है। ग्रहण के सन्दर्भ में भी ग्रहों की यह दक्षिणोत्तर गति महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

2.3.5 बोध प्रश्न

1. ग्रह किसे कहते है?
2. ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?
3. ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?
4. ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?
5. उच्च किसे कहते है?

2.4 ग्रह गति के प्रकार

ग्रह पृथ्वी के चारों और वृत्ताकार कक्षा में भ्रमण करते हैं। उस वृत्ताकार भ्रमण मार्ग का नाम ही राशिचक्र है। इस इकाई में अब तक जो भी जानकारियाँ प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार ग्रह कहाँ और किस प्रकार से भ्रमण करते हैं इस विषय को पूर्णतः समझने में सफल हुए है। ग्रह चाहे कहीं भी चलते हो या कैसे भी चलते हो किन्तु भूमि के अभिप्राय से देखने पर वे सभी राशि चक्र में पूर्व दिशा की ओर धीरे धीरे बढते हुए या खिसकते हुए नजर आते हैं और वहीं राशिचक्र स्थित ग्रहों की गति हमें काल के विभिन्न अवयवों की गणना करने में मदद करते हैं।

ग्रहों के गति के कारक उच्च और पात होते हैं। भौमादि पांच ग्रहों के दो दो उच्च हैं। उच्च ग्रह को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इस आकर्षण के कारण ग्रहों में सदा एक जैसे गति नहीं होती

है। अर्थात् ग्रह की गति हमेशा बदलती रहती है व विलक्षण रहती है।

2.4.1 आठ प्रकार की ग्रह गति

ग्रहों के ऊपर उत्पन्न विभिन्न प्रकार के आकर्षण तथा विकर्षणों के कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है।

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।

ग्रहों की आठ प्रकार की गतियाँ होती हैं। वे हैं वक्रा, अतिवक्रा, विकला, मन्दा, मन्दतरा, समा, शीघ्रा, शीघ्रतरा। इस श्लोक में कोई क्रम नहीं बताया है। सुविधा के अनुसार
श्लोक में प्रदत्त क्रम में ही इनका संक्षिप्त विवरण जानने का प्रयास करते है।

1. वक्रा

ग्रह की स्वाभाविक गति पूर्व दिशा की ओर होती है। ग्रह गति से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण में इस जानकारी को प्राप्त किये है। उस स्वाभाविक गति के विपरीत अर्थात् पश्चिमाभिमुख गति को वक्र गति कहते हैं। इस सन्दर्भ में अनेक प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। सभी प्रश्नों का उत्तर ग्रह गति प्रवृत्ति को समझने का प्रयास करने से हो जाता है।

आकाश में कोई पिण्ड अचानक विपरीत दिशा में चलें यह सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक दोनों रीतियों से भी इसको स्वीकारा नहीं जा सकता है। पुनः आचार्य लोग किस प्रकार से वक्रगति की बात बतायें हैं? जो गति होती ही नहीं है उसके आधार पर कालगणना करते है? यह प्रश्न दो प्रकार के निष्कर्षों पर ले जा सकता हैं। पहला निष्कर्ष है कि आचार्य लोग अवैज्ञानिक थे तथा ज्योतिष अवैज्ञानिक है। दूसरा सम्भावित निष्कर्ष है कि आचार्य गण अपने चिन्तन से भी ज्यादा वैज्ञानिक हैं।

ग्रह की गति भूसापेक्ष होती है। अर्थात् ग्रह में उत्पन्न गति अथवा भूमि पर स्थित होकर हम ग्रह की जिस गति को प्राप्त करते हैं वह गति वास्तविक ग्रह में नहीं बल्कि भूम्यभिप्रायक ग्रह की गति होती है। अर्थात् ग्रह की जो राश्यादि स्थिति भूमि से प्राप्त होती है वह किसी अन्य स्थान से प्राप्त नहीं हो सकती है।

ग्रह अपने मार्ग में निरन्तर भ्रमण करते हैं। यह गति रैखिक गति कहलाती है। उस गति के कारण आगे बढने वाला ग्रह भूकेन्द्र में जो कोण उत्पन्न करता है वह कोणीय गति है। इसी कोणीय गति का साधन भारतीय ज्योतिष में किया जाता है। अतः ग्रह में दृश्य वह गति पूर्ण रूप से भूमि पर उद्देश्य पूर्ति के लिए है।

भूमि के अभिप्राय से ग्रह अपने मार्ग में विपरीत चलता हुआ जो नजर आता है उसे वक्रगति कहते है।

2. अतिवक्रा

वक्र गति का अतिशय अतिवक्र कहलाता है। अर्थात् ग्रह की वक्र गति निश्चित व सामान्य से अधिक गति में हो तो उसे अतिवक्र कहते हैं।

3. विकला

विकला के स्थान में कुटिला आदि अन्य शब्दों को लेने की इच्छा कुछ आचार्य गण प्रकट करते हैं। विकला का सामान्य अर्थ कला विहीना गतिः (विगताः कलाः यस्याः) इस प्रकार से लिया जा सकता है। ग्रह जब मार्गी गति से वक्री गति में तथा वक्री गति से मार्गी गति में परिवर्तित होता है उस समय कुछ दिन के लिए उसकी गति स्तब्ध हो जाती है। उसी स्थिति को विकला गति कहते है।

अपने मार्ग में स्वाभाविक दिशा में भ्रमण करना मार्गी गति कहलाती है। स्तब्ध होने से तात्पर्य है ग्रह गति में कलादि अवयव स्थानों में भी कोई परिवर्तन नही होना अथवा अत्यन्त कम होना।

4. मन्दा

ग्रह की राशिचक्र में सीमित समय में सीमित परिक्रमाएं होती हैं।इसकी जानकारी हमने सूर्यादि ग्रहों के भगण नामक इकाई में प्राप्त की थी। उन परिक्रमाओं का नाम ही भगण है। ये परिक्रमाएं ग्रह की औसतन गति से मानी जाती है। अर्थात् ग्रह के भगण को भगणकालिक दिनों से भाग देने पर जो लब्धि आयेगी वह ग्रह की औसतन गति होगी। इसी गति को ग्रह की मध्यम गति कहते है। इस मध्यम गति से ग्रह की गति यदि कम हो जाती है तो उसको मन्दगति कहते है।

गति के कारक को उच्च कहा गया है। मन्द गति का कारक मन्दोच्च है। जब मन्दोच्च ग्रह को अपनी और आकृष्ट करता है उस समय ग्रह पृथ्वी से दूरतम स्थान में जाने के कारण भूकेन्द्र में उत्पन्न होने वाली कोणीय गति सामान्य से कम हो जाती है।

5. मन्दतरा

मन्दोच्च के आकर्षण के कारण ग्रह की गति जब अतिशय रूप में मन्द हो जाती है तो उसे मन्दतरा गति कहते हैं।

6. समा

मध्यम गति ही समा गति कहलाती है। जब ग्रह के ऊपर उच्चादि गतिकारकों का प्रभाव नहीं रहता है तब ग्रह अपनी सामान्य गति से भ्रमण करता है।

7. शीघ्रा

समा गति से अधिक गति को शीघ्र गति कहते हैं जो शीघ्रोच्च के अपकर्षण के कारण उत्पन्न होती है। ध्यातव्य विषय यह है कि जब भी उच्च के आकर्षण के प्रभाव में ग्रह आ जाता है तो स्वभावतः उसकी गति मन्द हो जाती है। राशिचक्रस्थ कोणीय मान को भोग करने के लिए पृथ्वी से दूर जाने वाले ग्रहों के लिए अधिक समय लगना ही इसका कारण है।

ग्रह के उच्च का अपकर्षण तब होता है जब ग्रह उच्च से दूर हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि ग्रह नीचासन्न होने पर उस पर उच्च का प्रभाव न होने के कारण उसकी गति अधिक हो जाती है। वास्तव में उच्च से दूर होने के कारण या नीच के आसन्न होने के कारण उस पर उत्पन्न होने वाला आकर्षण या विकर्षण ग्रह गति में परिवर्तन का कारक नहीं होता है। यहाँ पर आचार्यों ने सरल रीति से विषय को समझाने की दृष्टि से भूम्यभिप्रायक कोणीय गति का वर्णन इस प्रकार से किया है।

नीचासन्न ग्रह पृथ्वी के निकटतम स्थान में प्राप्त होने के कारण राशि चक्र के कोणीय विभागों के भोग करने में उसको लगने वाले समय में पर्याप्त मात्रा में कमी आना ही ग्रह की गति बढने का कारण है।

8. शीघ्रतरा

शीघ्र गति का अतिशय वृद्धि ही शीघ्रतरा गति कहलाती है। अर्थात् सामान्य गति से अधिक गति शीघ्र गति तथा शीघ्र से भी शीघ्र शूघ्रतरा गति होती है।

2.4.2 पाँच प्रकार की ग्रह की गति

अब तक ग्रह की आठ प्रकार की गति का वर्णन किया गया। वास्तव में प्रदत्त गतियों में तीन गति अन्य तीन गतियों की अतिशय मात्रा को ही दर्शाते है। अतः गति और अतिशय गति दोनों को एक ही मानने पर ग्रह की कुल पांच प्रकार की गति उत्पन्न होती है।

तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा

ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सातिवक्रगा।।

अतिशीघ्रा और शीघ्रा को शीघ्र गति की श्रेणी में , मन्दा और मन्दतरा को मन्द गति की श्रेणी में तथा वक्रा और अतिवक्रा को वक्र गति की श्रेणी में लेने पर ग्रहों की वास्तविक पांच प्रकार की गति सिद्ध होती है।

* शीघ्रा * मन्दा * समा * ऋज्वी * वक्रा

समा गति से तात्पर्य है बराबर की गति। अर्थात् ग्रह की दैनन्दिन गति में अन्तर न होना। यह स्थिति दो प्राकार की उत्पन्न हो सकती है। ग्रह की गति न ज्यादा न कम होने पर समा गति कह

सकते हैं। यह तो मध्यम गति ही है। दूसरी प्रकार की समा गति है विकला गति। अर्थात् एक से अधिक दिन ग्रह की एक ही गति होना। अत एव पांच प्रकार की ग्रह गति में आचार्य रंगनाथ समा गति को एक मानते है तो सुधाकर द्विवेदी सहित कुछ अन्य आचार्य समा गति के स्थान में विकला गति का ग्रहण करते हैं। किन्तु दोनों में किसी भी मत का ग्रहण करने से स्थिति में कोई अन्तर उत्पन्न नही होता है। अतः ग्रह की पांच प्रकार की गति के अन्तर्गत समा तथा विकला में से किसी एक का ग्रहण स्वीकारा जा सकता है।

2.4.3 बोध प्रश्न

1. ग्रह की कौनसी गति होती है?
2. ग्रह की गति कितनी प्रकार की होती है?
3. ग्रहों की स्वाभाविक गति किस दिशा में होती है?
4. ऋज्वी गति किसे कहते हैं?
5. ग्रह भ्रमण मार्ग का केन्द्र भू केन्द्र है। हाँ या नहीं

2.5 ग्रह गति का साधन

ग्रह गति का साधन ग्रह स्पष्टीकरण के समान ही होता है। औसतन गति को वास्तविक व तत्कालिक गति बनाने की प्रक्रिया उसी प्रसंग में वर्णित है जो ग्रह साधन में भी बताया गया है। ग्रह स्पष्टीकरण में सर्वप्रथम मध्यम ग्रह का साधन किया जाता है। मध्यम ग्रह का साधन ग्रह भगणों के आधार पर किया जाता है। स्पष्टता के लिए सूर्य का एक उदाहरण लेते हैं। सूर्य एक महायुग में 4,32,0000 भगण पूरा करता है। एक महायुग में सावन दिनों की संख्या 157,79,17,828 है। सूर्य के भगणों को सावन दिनों से भाग देने पर एक दिन की सूर्य की गति $59^{'}07^{''}$ विकला प्राप्त होता है। यह सूर्य की औसतन (मध्यम) गति है। महायुग के प्रारम्भ से अभीष्ट दिन तक जितने सावन दिन बीत चुके हैं उनको गत दिन कहते हैं। इन्ही गत दिनों का नाम अहर्गण है। यहाँ पर मध्यम ग्रह का साधन दो प्रकार से किया जाता है।

यथा स्वभगणाभ्यस्तः दिनराशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्रहो भवेत्।।

ग्रह के भगण मान को दिनराशि (अभीष्ट दिनपर्यन्त दिन संख्या जिसको अहर्गण कहते है) से गुणाकर महायुगीय सावन दिवसों से भाग देने पर भगणादि मध्यम ग्रह प्राप्त होता है। अर्थात् लब्धि में प्रथमांक भगण , उसके उपरान्त राशि तथा तत्पश्चात् अंश एवं कला प्राप्त होंगे।

$00^{\text{भगण}}/00^{\text{राशि}}/00^{\text{अंश}}/00^{\text{कला}}$

गतदिनों को मध्यम गति से गुणा करने पर भी यही फल उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् मध्यम ग्रह में मध्यम और स्पष्ट ग्रह के अन्तर का संस्कार करने पर स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है। स्पष्ट ग्रह साधन से सम्बन्धित इकाई में ग्रह साधन के बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे। उसी प्रकार से मध्यम गति और स्पष्ट गति का साधन कर संस्कार करने पर ग्रह की स्पष्ट गति उपलब्ध होती है।

2.5.1 बोध प्रश्न

1. औसतन गति का अन्य नाम क्या है?
2. औसतन गति का साधन किस विधि से किया जाता है?
3. औसतन गति किसे कहते है?
4. औसतन गति का क्या प्रयोजन है?
5. औसतन गति वास्तविक गति से भिन्न क्यों होती है?

2.6 सारांश

ग्रह अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। यह एक सामान्य विषय है तथा खगोल का एक साधारण दृश्य घटक है। भूमि के अभिप्राय से ग्रह भूमि की चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में कोणीय गति से भ्रमण करते हैं तथा उस कोणीय गति के कारण अभीष्समय में ग्रह की राशिचक्र में जो स्थिति होगी उसे ग्रह का स्थान या स्पष्ट ग्रह कहते है। इन्हीं राशिचक्र में स्थित स्पष्टग्रहों की सहायता से काल का साधन करते है यह एक विशेष बात है। ग्रहों के आधार पर काल साधन करने की विशेष बात पर आधारित एक वैदिकवाङ्मय सम्बद्ध विषय है जो ज्योतिष शास्त्र है। ज्योतिष को भाग्य जानने की दृष्टि से आम जनता देखती है। इस ज्योतिष का वास्तविक मुख्य उद्देश्य काल साधन है तथा इस काल साधन कार्य हेतु प्रकल्पित ज्योतिष की शाखा को सिद्धान्त स्कन्ध कहते हैं। विगत कुछ इकाईयों में सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित सामान्य जानकारियों के साथ साथ ग्रहों के भगणों से सम्बन्धित जानकारियाँ भी प्राप्त की हैं।

वर्तमान इकाई में ग्रहगति से सम्बन्धित विवेचन किया गया है। ग्रह की वह गति जो भूमि देखी जाती है इसे ही भूकेन्द्राभिप्रायिक व भूम्यभिप्रायिक ग्रहगति कहते हैं। इसको सापेक्ष भी कह सकते हैं। ग्रहों की भूसापेक्ष स्थिति तथा गति के बारे में इस इकाई में हमने जानकारी प्राप्त की हैं।

पृथ्वी के चारों ओर वृत्ताकार कक्षा में ग्रहों के भ्रमण का जो तथ्य दर्शाया गया है वह भूमि के अभिप्राय से निश्चित रूप से तथ्य है। किन्तु यह तथ्य भूसापेक्ष है। भूसापेक्ष होने के कारण तथा वास्तव में ग्रहों की कक्षा के केन्द्र में भूमि न होने के कारण ही उच्च की कल्पना की गई थी। उच्च

कोई कल्पना नहीं, भूमि से ग्रहकक्षा का दूरतम बिन्दु है। केन्द्र में स्थित पृथ्वी से चारों ओर स्थित कक्षा में यदि दूरतम तथा निकटतम बिन्दुओं की बात आती है तो यह विदित हो जाता है कि ग्रह भूमि के चारों ओर भूमि को केन्द्र बनाकर नहीं भ्रमण कर रहे हैं।

सारांशतः आसमान में चलते चलते ग्रह भूकेन्द्र में जो कोण उत्पन्न करते हैं अथवा भूम्यभिप्राय से राशिचक्र में ग्रहों की जो कोणीय गति उत्पन्न होती है उसे ग्रह गति कहते हैं। यह गति ग्रहकक्षा के पृथ्वी के चारों ओर समान दूरी में न रहने के कारण विलक्षण होती है। इस विलक्षणता के अन्तर्गत ग्रह की आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है। उन आठ प्रकार की गतियों के सादृश्यता के आधार पर विभाजन व वर्गीकरण करने पर पांच प्रकार की ग्रह की गति सिद्ध होती है। इस गति का साधन स्पष्ट ग्रह के साधन के समान ही किया जाता है।

2.7 बोध प्रश्नो का उत्तर

2.3.5

1. क. ग्रह वे आकाशीय पिण्ड है जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित दिखते है।
   ख. उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते है जो राशि व नक्षत्रों का ग्रहण करते है।
   ग. उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते है जो भचक्र के पश्चिमाभिमुख परम वेग युत गति के साथ पूर्वाभिमुख गति का धारण करते हैं।
2. राशि चक्र में
3. भचक्र के साथ पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह पूर्वदिशा की ओर लम्बित होते है। इसी पूर्वाभिमुख लम्बन को ग्रह की गति कहते है।
4. शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात
5. ग्रहभ्रमण मार्ग में जो बिन्दु भू केन्द्र से दूरतम बिन्दु व स्थान

2.4.3

1. पूर्वाभिमुखी
2. आठ
3. पूर्व दिशा
4. ग्रह की स्वाभाविक व पूर्वाभिमुख गति
5. नहीं

3.5.1

1. मध्यम गति

2. त्रैराशिक व आनुपातिक

3. एक निश्चित कालखण्ड के लिये प्रदत्त भगणों के आधार पर एक दिन के लिये साधित ग्रह गति को औसतन गति कहते है।

4. वास्तविक व स्पष्ट गति का साधन करने के लिये मुख्य उपकरण के रूप में औसतन गति का प्रयोग किया जाता है।

5. उच्च की आकर्षण तथा विकर्षणों के कारम ग्रह की गति विलक्षण होती है। अतः औसतन और वास्तविक गतियों में अन्तर उत्पन्न होता है।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. कल्पित उदाहरण से गति का साधन करें।
2. मध्यम गति और स्पष्ट गति का अन्तर प्राप्त करने की विधि स्पष्ट करें।
3. उच्च ग्रह गति में विलक्षणता को किस प्रकार से उत्पन्न करता है¿

2.10 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **ग्रह**

जो ग्रहण करता है उसे ग्रह कहते हैं। संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति है ** गृह्णातीति ग्रहः**। **ग्रह उपादाने** इस धातु से ग्रह शब्द उत्पन्न हुआ है।

- **वेध**

सिद्धान्त ज्योतिष में अधिक रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द है वेध। सामान्यतः वेथ शब्द का अर्थ छेदन से लिया जाता है। जैसे कर्णवेध। कान में बाली पहनाने के लिये छेद करने की प्रक्रिया को कर्णवेध कहते है।

किन्तु ज्योतिष में आकाशीय ग्रह तथा उससे सम्बन्धित अन्य स्थान व विशेषताओं का प्रत्यक्ष दर्शन करने की विधि को वेध कहते है।

संस्कृत में **'विध छेदने'** नामक धातु से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। इस धातु का प्रयोग सम्बन्धार्थ में होता है। ग्रह वेध नामक कार्य में आंखों का सम्बन्ध व सम्पर्क आकाशीय पिण्ड या उससे सम्बन्धित पदार्थों से होता है। अतः यहाँ पर वेध प्रक्रिया का अर्थ आंखों से सम्पर्क करने की अर्थ में लिया जा सकता है।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहभ्रमण से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. ग्रहगति के प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
3. ग्रहगति का साधन कीजिये।
4. मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 3 ग्रहों के उदयास्तादि विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 ग्रहोदयास्त परिचय

3.4 ग्रहों का उदय और अस्त का गणितीय पक्ष

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहों के उदयास्तादि विचार। इससे पूर्व आपने ग्रहों की गति से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहों के उदय-अस्त के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहोदयास्त' का सम्बन्ध ग्रहों के उदय एवं अस्त की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहों की स्थितियों का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहोदयास्त' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहोदयास्त को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहोदयास्त को समझा सकेंगे।
- ग्रहों की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- कौन सा ग्रह कब उदय होगा अथवा अस्त होगा इसे समझ लेंगे।

3.3 ग्रहोदयास्त परिचय

ग्रहोदयास्त से तात्पर्य ग्रहों के उदय एवं अस्त से है तथा गणित ज्योतिष का यह मुख्य विषय माना जाता है। वस्तुत: सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त हो जाते हैं। मध्यमाधिकार में हम मध्यम ग्रह का साधन करते हैं, स्पष्टाधिकार में ग्रह स्पष्ट का साधन करते हैं। वहीं स्पष्ट ग्रह कब उदित और अस्त होगा? अर्थात् क्षितिजानुरोधेन वह कब उदित और अस्त होगा? इसका ज्ञान हमें उदयास्ताधिकार में प्राप्त होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आइए हम ग्रहों के उदयास्त का अध्ययन करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी द्वारा विचरचित सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रहोदयास्त – नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षण की बात करते हैं। वह ग्रहों के नित्य उदयास्त लक्षण की बात करते हुए कहते हैं कि -

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।
ऊनोऽधिकः पश्चिममदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहते हैं। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है। इसी प्रकार यदि पश्चिम दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

प्राग्दृग्ग्रह तथा पश्चिम दृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमी क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिन्दु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के उपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहना है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के उपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

सूर्यासन्न अभाव के कारण उदयास्त -

निरूक्तौ ग्रहस्येति नित्योदयास्ताविनासन्नभावेन यौ तौ च वक्ष्ये।
रवेरूनभुक्तिर्ग्रहः प्रागुदेति प्रतीच्यामसावस्तमेत्यन्यथान्यः॥

नित्योदय के अतिरिक्त निरूक्त (ग्रह) के उदयास्त को आचार्य कहते हैं। यदि किसी ग्रह की गति रवि से अल्प हो तो पूर्व दिशा में उदित तथा पश्चिम में अस्त होता है। जैसे मंगल, गुरू, शनि अन्यथा होने पर विपरीत होता है अर्थात् सूर्य से अधिक गति ग्रह पश्चिम में उदित या पूर्व में अस्त होता है। जैसे चन्द्रमा।

मन्द गतिक् ग्रह के निकट जब सूर्य रहता है तो वह ग्रह अदृश्य होता है। वहॉ से सूर्य शीघ्र गति से उससे आगे हटता जाता है तथा मंदगतिक ग्रह पीछे हटता जाता है। अतः इस प्रकार पीछे रहा मन्दगति ग्रह पूर्व दिशा में सूर्योदय से पूर्व दृश्य होता है। यदि मन्दगति ग्रह सूर्य से अधिक आगे स्थित हो तो शीघ्रता से रवि उसके आसन्न जाता है तब सूर्य किरणों से आच्छादित ग्रह पश्चिम में अस्त होता है। इसी प्रकार युक्ति से अधिक भुक्ति वाला ग्रह पश्चिम में उदित तथा पूर्व में अस्त होता है।

बुध शुक्र में विशेष -

ज्ञशुक्रावृजू प्रत्यगुद्गम्य वक्रां गतिं प्राप्य तत्रैव यातः प्रतिष्ठाम्।

ततः प्राक् समुद्गम्य वक्रावृजुत्वं समासाद्य तत्रैव चास्तं व्रजेताम्।।

अर्थात् बुध शुक्र मार्गी होने पर तथा उनकी भुक्ति अधिक होने से पश्चिम में उदित होत हैं तथा वहॉ वक्री होकर वहीं पर अस्त हो जाते है तथा वक्री रहते हुए पूर्व में उदित होते हैं और वहॉ अवक्री होकर अधिक गति होने के कारण पूर्व में ही अस्त हो जाते है।

कालांश ज्ञान -

दस्रेन्दवः शैलभुवश्च शक्रा रूद्राः।
खचन्द्राः तिथयः क्रमेण।।
चन्द्रादितः काललवा निरूक्ता।
ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः।।

अर्थात् चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र तथा शनि के निरूक्त कालांश क्रमाश: 12°, 17°, 14°, 11°, 10°, 15° होते हैं। वक्री बुध, षुक्र के कालांष इनसे दो कम अर्थात् क्रमश: 12 तथा 8 होते हैं।

कालांश का अर्थ कालात्मक अंश है। छः अंश की एक घटी होती है। एक अंश का दस पानीय पल होता है। सूर्य से अस्त होकर उदय होने में चन्द्रमा को दो घटी लगता है। इससे कम समय में सूर्य की प्रभा से आच्छादित होने से अदृश्य होता है। दो घटी बारह अंश के तुल्य होती है अतः चन्द्रमा के कालांश 12 होते हैं। इतने अंश से अधिक अन्तर पर चन्द्रमा दृष्टयोग्य होता है। मंगल के 17 अंश 2/50 घटियों के तुल्य होते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए कहे गये कालांश न्यूनाधिक उल्के बिंबों की स्थूल-सूक्ष्मता वश है और बुध-शुक्र के बिम्ब वक्र गति होने पर पृथ्वी से निकटतम होने के कारण अधिक चमकदार तथा बडे होने से उनके कालांश 2 अंश न्यून कहे हैं। क्योंकि तब वे सूर्य से अधिक सान्निध्य में होने पर अस्त होते हैं।

ग्रहोदयास्त समय ज्ञात करना -

यत्रोदयो वास्तमयोऽवगम्यस्तदिग्भवो दृक्खचरो रविश्च।
अस्तोदयासन्नदिने कदाचित् साध्यस्तु पश्चात् तरणिः सषड्भः।।

ग्रह के उदय व अस्त को जब जानना हो तो ग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम उदयास्त के अनुसार पूर्व अथवा पश्चिम दृग्ग्रह की तथा सूर्य की स्थिति उस दिन उदयास्त से कुछ पूर्व ज्ञात करना चाहिये। यदि ग्रह पूर्व में उदित हो तो ग्रह साधन करके उदय लग्न साधन करें। यदि पश्चिम में ग्रह उदयास्त हो तो ग्रह का साधन करके सूर्य में छः राशि जोड़ कर लग्न साधन करे।

उक्तेभ्य उनाभ्यधिका यदीष्टा: खेटोदयो गम्यगतस्तदा स्यात्।
अतोऽन्यथा वास्तमयोऽवगम्यः प्रोक्तेष्ट कालांशवियोगलिप्ताः।।

खाभ्राष्टभूघ्ना द्युचरोदयाप्ताः खेटार्कभुक्त्यन्तरभाजिताश्च।
वक्रे तु भुक्त्यैक्यहृता अवाप्तास्तदन्तराले दिवसा गतैष्या:।
तात्कालिकाभ्यां रविदृग्ग्रहाभ्यां मुहुः कृतास्ते स्फुटतां प्रयान्ति।।

यहाँ इस श्लोक में ग्रह के उदित होने अथवा उदित हो चुकने का ज्ञान बतलाया गया है। आचार्य का कथन है कि प्राप्त इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह को उदय होना शेष होता है। यदि अधिक हो तो उदय हो चुका होता है। अस्त के समय इससे विपरीत होता है अर्थात् यदि इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह अस्त हो चुका तथा अधिक हो तो अस्त कब होगा। पठित कालांश तथा इष्ट कालांश के अन्तर को १८०० से गुणा करके दृग्ग्रह की आक्रांत राशि के स्वदेशीय उदय असुओं से विभक्त करके प्राप्त कला फल को, ग्रह वक्री हो तो ग्रह तथा सूर्य की गति के अन्तर से पुन: विभक्त करने से तथा मार्गी होने पर दोनों के गति योग से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमश: ग्रह उदित होने के पश्चात् की दिन संख्या तथा उदित होने में शेष दिनों की संख्या होती है।

ग्रहनक्षत्रों के उदयास्त में वैशिष्ट्य –

प्रवह वायु द्वारा पूर्व की ओर गतिशील ग्रहों एवं नक्षत्रों के क्षितिज के सान्निध्य से जो उदयास्त होता है वह उनका प्रतिदिन अपने-अपने सावन दिनों में लेना प्रसिद्ध ही है। यहाँ न्यून किरण वाले ग्रह एवं नक्षत्रों के सूर्य की समीपता के कारण सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से उन ग्रह एवं नक्षत्रों का नहीं दिखाई देना ही उनका अस्त होना तथा सूर्य से जितने अन्तर पर जाने से उनका दिखाई देना ही उदय कहलाता है।

उदयास्त में दिशा ज्ञान -

सूर्यादभ्यधिका: पश्चादस्तं जीवाकुजार्कजा:।
ऊना: प्रागुदयं यान्ति ज्ञशुक्रौ वक्रिणौ तथा।।
ऊना विवस्वत: प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञ भार्गवा:।
व्रजन्त्यभ्यधिका: पश्चादुदयं शीघ्रयायिन:।।

अर्थात् वृहस्पति मंगल एवं शनि वक्री हों या मार्गी सूर्य से अधिक (आगे) होने पर पश्चिम में अस्त होते हैं। तथा सूर्य से पीछे कम होने पर पूर्व दिशा में उदित होते हैं। बुध एवं शुक्र दोनों यदि वक्री हों तो सूर्य से आगे गये होने पर पश्चिम दिशा में अस्त तथा सूर्य से कम होने पर पूर्व में उदित होते हैं। सूर्य की तुलना में अधिक गति होने वाले चन्द्र –बुध एवं शुक्र ग्रह सूर्य से कम होने पर पृष्ठगत होने से पूर्व दिशा में अस्त होते हैं तथा सूर्य से आगे गये होने पर पश्चिम दिशा में उदित होते हैं।

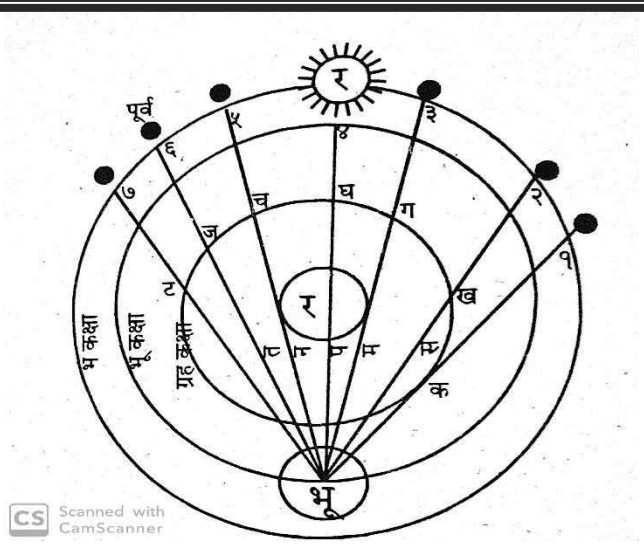

Scanned with CamScanner

बृहस्पति–मंगल एवं शनि ग्रहों की गति सूर्य से कम होती है अतः वे मार्गी हों यावक्री जब सूर्य से आगे हों तो उनकी प्रत्येक दिन की गति कम होने से सूर्य के साथ उनका अन्तर कम होते जाने से दिन की समाप्ति पर स्वकालांश से कम अन्तर होने पर पश्चिम दिशा में अस्त होना कहा गया है। वे अस्तकाल के बाद से लेकर जब सूर्य से पृष्ठगत हों तब अधिक गति वाले सूर्य से उनका अन्तर बढते जाने के कारण से कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर रात्रि शेष में अर्थात् सूर्योदय से पहले ही पूर्व दिशा में उनके उदित होने की बात कहा जाना उचित ही है।

वक्र गति वाले बुध एवं शुक्र की सूर्य से अधिक गति होने से जब वे सूर्य से आगे गये हुए हों तो वक्र गति वाले होने से उनके सूर्य से प्रतिदिन के अन्तर के घटते जाने के कारण कालांश से कम अन्तर होने पर वे दोनों पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य से पीछे उन वक्री ग्रहों के होने पर हर दिन पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य से पीछे उन वक्री ग्रहों के होने पर हर दिन पश्चिम की ओर गति करते हुए (वक्र गति के कारण) उनका सूर्य से अन्तर बढते जाने के कारण कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर पूर्व में उदय होगा ही।

चन्द्र–बुध–शुक्र मार्गी होने पर सूर्य से इनकी गति अधिक होने से जब सूर्य से ये पीछे होते हैं तो उनकी अधिक गति होने के कारण से प्रतिदिन सूर्य के साथ उनका अन्तर कम होते जाने से पूर्व दिशा में उनका अस्त होना कहा गया है। अस्तकाल के बाद जब वे सूर्य से आगे गये हुए होते हैं तो कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर पश्चिम दिशा में उदय होते हैं।

सूर्य से अधिक या कम ६ राशि के अन्तर पर ही आगे या पीछे गये हुए समझने चाहिए।

Scanned with CamScanner

नवीनाचार्यों के मतानुसार ग्रह एवं पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। यहाँ सरलता से जानने के लिए ग्रह भ्रमण मार्ग को वृत्ताकार मानकर उनके उदयास्त की स्थिति को दिखाया जा रहा है—

क्षेत्र परिचय— बनाये गये चित्र में अपनी कक्षा में 'क' बिन्दु पर गया हुआ ग्रह भू निवासियों द्वारा भगोल में १ बिन्दु पर दिखाई देता है। इसी तरह ख,ग,घ,च,ज,ट बिन्दुओं पर अपनी कक्षा में घूमता हुआ ग्रह भूनिवासियों द्वारा आकाश कक्षा में २,३,४,५,६,७ बिन्दुओं पर मार्गीगति जैसा दिखाई देता है। लेकिन जब ग्रह अपनी कक्षा में 'ट' बिन्दु से आगे होने पर त,न,प,म,सं,क बिन्दुओं पर होता है तो भ कक्षा में ७ बिन्दु से लौटकर ६,५,४,३,२,१ बिन्दुओं पर चलता हुआ वक्रगति जैसा दिखाई देता है। इसका विस्तार से विचार ग्रहों की ८ प्रकार की गति विचार प्रकरण में स्पष्टाधिकार में किया जा चुका है। इस क्षेत्र में यहाँ प्रदर्शित विषय का ही वर्णन किया जा रहाहै। भूपृष्ठ से सूर्यकेन्द्रगत सूत्र भ कक्षा में जहाँ लगता है वहाँ ''र'' सूर्यबिम्ब स्थिर भूवासियों द्वारा देखा जाता है। स्वकक्षा में स्थित 'क' बिन्दु गत ग्रह भकक्षा में १ बिन्दु पर दिखाई देता है। वहाँ ग्रह का सूर्य के साथ अन्तर अधिक होने से ग्रह बिम्ब बडा दिखाई देता है। उस स्थान से आगे मार्गीगति से चलते हुए ग्रह के सूर्य के साथ ज्यों–ज्यों अन्तर कम होता जाता है वैसे–वैसे ग्रह क्षीण लगता है। इसी तरह सूर्य से कालांश तुल्य अन्तर होने पर '३' बिन्दु पर वर्तमान ग्रह सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से भू निवासियों को नहीं दिखाई देता। वहाँ ४ बिन्दु की तुलना में ३ बिन्दु पर गया हुआ ग्रह सूर्य से कम होने से पूर्वक्षितिज के लगभग सूर्य होने पर पूर्व दिशा में अस्त होता है। 'र' बिन्दु पर ग्रह के परम अस्त होने के कारण से। वहाँ से मार्गी गति से चलता हुआ ग्रह जब सूर्य से आगे कालांशाओं से अधिक अन्तर पर '५' बिन्दु पर जाता है तो सूर्यास्त होने पर पश्चिम दिशा में क्षितिज से ऊपर ग्रह दिखाई देता है। इसी तरह प्रतिदिन मार्गीगति से चलते हुए ग्रह के अन्तर कीवृद्धि के कारण से ६,७ दोनों बिन्दुओं से उत्तरोत्तर ग्रह बिम्ब बड़ा होता जाता है। तथा अपनी कक्षा में मार्गीगति ही ''ट'' बिन्दु से आगे त, न इत्यादि क्रम से चलता हुआ ग्रह भकक्षा में वक्रगति के समान पश्चिम की ओर जाता हुआ सूर्य के लगभग '५' बिन्दु पर पश्चिम दिशा में अस्त होता है। पुनः 'र' बिन्दु पर उसका परम अस्त है ।वक्री ग्रह ही जब ३ बिन्दु पर गया हो तो रात्रि शेष में पूर्व दिशा में उसका उदय होता है यह क्षेत्र देखने से स्पष्ट है।

यह स्थिति पृथ्वी एवं सूर्य के बीच में गये हुए ग्रह कक्षा में दिखाई देती है, इस तरह बुध एवं शुक्र दोनों के उदयास्त की उत्पत्ति नवीनाचार्यों के मतानुसार

Scanned with CamScanner

भी सूर्य सिद्धान्त के समान ही है। इससे बुध एवं शुक्र मार्गी होकर पश्चिम में उदित होकर,वक्री एवं मार्गी होते हुए पश्चिम में ही अस्त होते हैं। यह सिद्धान्त शिरोमणि में कहा गया भास्कराचार्य का कथन भी सिद्ध होता है।

लेकिन भू के ऊपर की कक्षा में मंगल–गुरु–शनि का सूर्य की स्थिरता के कारण से सूर्य सिद्धान्त में कहे गये उदयास्त नहीं होते, किन्तु जब वे सूर्य से कम अर्थात् पृष्ठगत हों, कालांशाओं के भीतर ही हों तो दिन समाप्त होने पर पश्चिम में उदित दिखाई देते हैं। इसका कारण उदयास्त की दिशा विपरीत होना है, जो नवीनाचार्यों ने भू भ्रमण (सूर्य की परिक्रमा को) स्वीकार कर तथा स्वाङ्ग भ्रमण (स्वाक्षे भूमेः भ्रमणात्) अर्थात् अपनी धुरी पर घूमने के कारण ये उदयास्त प्राप्त होते हैं। अतः अनुमान करते हैं कि प्राचीनाचार्यों ने सूर्य को केन्द्रीभूत ग्रह कक्षा मानी हैं तथा उनका मार्गी एवं वक्री भेद पूर्व में स्पष्टाधिकार में ग्रहों के आठ प्रकार की गति विचार में बता दिया गया है, उसमें देख लें।

Scanned with CamScanner

कालांश ज्ञान की आवश्यकता –

एभ्योऽधिके: कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शना।
भवन्तिलोके खचरा भानुभाग्रस्त मूर्तय:।।

अर्थात् सूर्य से जितने अन्तर के अंशों पर ग्रह रहने पर अदृश्य होता हो उतने ही अंश उस ग्रह की कालांश कहलाता है। इसलिए ग्रह की इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अधिक होते हैं तो सूर्य से ग्रह के अधिक अन्तर पर स्थित होने के कारण वह ग्रह दृश्य या उदित कहलाता है। तथा पठित कालांशों से इष्ट कालांश कम हो तो सूर्य के साथ ग्रह के अन्तर के न्यून होने के कारण उसका अदर्शन या अस्त होना जो कहा गया है यह सही है, यह उत्पन्न होता है।

नक्षत्रों के कालांश –

स्वात्यगस्त्य मृगव्याध चित्रा ज्येष्ठा: पुनर्वसु:।
अभिजित् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकै:।।
हस्तश्रवणफाल्गुन्य: श्रविष्ठा रोहिणी मघा।
चतुर्दशांशकैर्दृश्या विशाखाऽश्विनिदैवतम्।।
कृतिकामैत्रमूलानि सार्प रौद्रर्क्षमेव च।
दृश्यन्ते पंचदशभिराषाढाद्वितयंतथा।।
भरणीतिष्य सौम्यानि सौक्ष्म्यात् त्रिसप्तकांशक:।
शेषाणि सप्तदशभिर्दृश्यादृश्यानि भानि तु।।

स्वाती, अगस्त्य, लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय ये आठ नक्षत्र सूर्य से १३ अंश पीछे उदित तथा आगे हाने पर अस्त होते हैं। इसलिए इनकी उदयास्त कालांशा १३ अंश है। हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, घनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी इन नक्षत्रों की उदयास्त कालांशा १४ अंश होते हैं। कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ ये ७ नक्षत्र १५ कालांशाओं से उदयास्त होते हैं। भरणी, पुष्य, मृगशिरा ये ३ नक्षत्र इनके अतिलघु बिम्ब होने से २१ कालांशाओं से दिखाई देते हैं। शेष नक्षत्र शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ब्रह्मा, अग्नि, अपांवत्स १७ कालांशों से उदयास्त होते हैं। नक्षत्रों में भी जिनके बिम्ब स्थूल होते हैं उनकी कालांशा कम एवं लघु होते हैं उनकी कालांशा अधिक होती है। जिस तरह ग्रह के उदयास्त के गत एवं गम्य दिनों का साधन किया जाता है उसी तरह नक्षत्रों के भी उनकी उपर्युक्त कालांशाओं के अनुसार उदयास्त के गतैष्य दिन केवल सूर्य की गति से ही साधित कर सकते हैं क्योंकि नक्षत्रों की गति नहीं होने से केवल सूर्य की गति का ही ग्रहण किया गया है।

''नक्षत्रों के उदयास्त कालांश बोधक सारिणी''

क्र.सं.	नक्षत्रों के नाम	उदयास्त कालांश
१.	स्वाती, अगस्त्य, लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय	१३° अंश
२.	हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी	१४° अंश
३.	कृत्तिका, अनुराधा, मूल, अश्लेषा आर्द्रा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा	१५° अंश
४.	भरणी, पुष्य, मृगशिरा	२१° अंश
५.	शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ब्रह्मा, अग्नि, अपाँवत्स	१७°अंश

Scanned with CamScanner

सदोदित नक्षत्र –

अभिजिद् ब्रह्महृदयं स्वातिवैष्णव वासरा:।
अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्नलुप्यन्तेऽर्क रश्मिभि:।।

अर्थात् अभिजित्, ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा तथा उत्तरभाद्रपद ये ६ नक्षत्र क्रान्तिवृत्त से उत्तर

में शराग्र से अधिक भाग पर स्थित होने के कारण सूर्य की किरणों के प्रभाव से अस्त नहीं होते हैं। पूर्व पद्य में अभिजित् ब्रह्महृदय को १३ अंशों के अन्तर पर होने से ही अभिजितादि की उदयास्त कालांश १३ बतायी गयी है एवं अब कह रहे हैं कि ये अभिजित् ब्रह्हृदय सदोदित नक्षत्र हैं ऐसा कथन क्यों है? यह बता रहे है कि अभिजितादी अपने-अपने तारा पुंजों में जो प्रधान योगतारा होती है वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर में अधिक शर के अन्तर पर रहने के कारण उन नक्षत्रों की योगतारा सदोदित होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1. चन्द्रमा का कालांश कितना होता है।

   क. १२ अंश ख.१४ अंश ग.१५ अंश घ.१६ अंश

2. वृहस्पति, मंगल एवं शनि वक्री या मार्गी होकर किस दिशा में अस्त होते है।

   क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

3. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार वृहस्पति के उदयास्त कालांश कितने है।

   क. ११ अंश ख.१२ अंश ग. १३ अंश ध. १४ अंश

4. सूर्य से जितने अन्तर के अंशों पर ग्रह रहने पर अदृश्य होता हो उतने ही अंश उस ग्रह की क्या कहलाता है।

   क. उदय ख. अस्त ग. कालांश घ. ग्रहयुति

5. निम्न में सदोदित नक्षत्र हैं।

   क. अभिजित् ख. ब्रह्महृदय ग. स्वाति घ. इनमें सभी

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ग्रहोदयास्त से तात्पर्य ग्रहों के उदय एवं अस्त से है तथा गणित ज्योतिष का यह मुख्य विषय माना जाता है। वस्तुत: सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त हो जाते हैं। मध्यमाधिकार में हम मध्यम ग्रह का साधन करते हैं, स्पष्टाधिकार में ग्रह स्पष्ट का साधन करते हैं। वहीं स्पष्ट ग्रह कब उदित और अस्त होगा? अर्थात् क्षितिजानुरोधेन वह कब उदित और अस्त होगा? इसका ज्ञान हमें उदयास्ताधिकार में प्राप्त होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आइए हम ग्रहों के उदयास्त का अध्ययन करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी द्वारा विचरचित सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रहोदयास्त – नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षण की बात करते हैं। वह ग्रहों के नित्य उदयास्त लक्षण की बात करते हुए कहते हैं कि -

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।
ऊनोऽधिकः पश्चिममदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहते हैं। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है। इसी प्रकार यदि पश्चिम दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

प्राग्दृग्ग्रह तथा पश्चिम दृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमी क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिन्दु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के उपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहना है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के उपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहोदयास्त – ग्रहों का उदय एवं अस्त को ग्रहोदयास्त कहते हैं।

कालांश – काल सम्बन्धित अंश कालांश कहलाता है। सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य ही उदित एवं अस्त होते हैं।

उदय – ग्रह का दिखलाई पड़ना या दर्शन होना।

अस्त – ग्रह का क्षितिजानुरोधेन अदर्शन होना।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

क्रान्तिवृत्त- कदम्ब से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. क 4. ग 5. घ

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदयास्त किसे कहते है। वर्णन कीजिये।
2. ग्रहों के कालांश का वर्णन कीजिये?
3. नक्षत्रों के कालांश का उल्लेख कीजिये।
4. उदयास्त को सक्षेत्र स्पष्ट कीजिये।
5. उदयास्त पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - 4 दृक्कर्मादि विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 दृक्कर्म परिचय
4.4 दृक्कर्म में विशेष
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दृक्कर्म परिचय। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति, ग्रहोदयास्त, ग्रहयुति एवं पात से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप दृक्कर्म के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'दृक्कर्म' का सम्बन्ध ग्रहों के उस स्थिति से है, जिसके संस्कारोपरान्त ग्रह दृश्यानुरोधेन स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए दृक्कर्म को परिभाषा करते हुए कहते है कि – दृश: कर्म: दृक्कर्म:। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहों का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'दृक्कर्म' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दृक्कर्म को परिभाषित कर सकेंगे।
- दृक्कर्म को समझा सकेंगे।
- 'दृक्कर्म' की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- दृक्कर्म का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

4.3 दृक्कर्म परिचय

सर्वप्रथम दृक्कर्म का प्रयोजन क्या है? आइए इसको समझने का प्रयास करते हैं।

नक्षत्र एवं ग्रह की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रह के उदयास्त साधन में, चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन में दृक्कर्म का संस्कार यथासम्भव पहले ही कर लेना चाहिये, ऐसा पूर्व में में बतलाया गया है। इसका आशय है कि दृक्कर्म से संस्कार किये जाने पर ही नाक्षत्र एवं ग्रह तथा दो ग्रहों की युति का भी विचार किया जाता है।

गणितीय दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त स्थान से शराग्रगत दोनों की युति तो एक कदम्ब प्रोतवृत्त दोनों होने पर ही उनके अन्तर का अभाव होता है। क्रान्तिवृत्त में तिरछे रूप में कदम्ब प्रोतवृत्त होता है। परन्तु कदम्ब की दोनों तारायें अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई न दे पाने से विपुलताराश्रित ध्रुवप्रोतवृत्त में दोनों के गये हुए होने से ही भास्करादि ने उनकी युति ध्रुवप्रोतवृत्त में कही है, अत: ग्रहों की युतियों में केवल आयनदृक्कर्म की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक युति तो उन दोनों की (नक्षत्र एवं ग्रह की अथवा दोनों ग्रहों की) कदम्ब सूत्र में स्थित होने पर ही होती है। भास्कराचार्य का भी यही कथन

है। वासना भाष्य इसलिए कहा है – कदम्ब में प्रसिद्ध ताराओं का अभाव होने से देखने वाले को इस युति की प्रतीति नहीं हो पाती अत: ध्रुव सूत्र में ही युति कही है। युति प्राय: कदम्ब सूत्र में स्थित होने वाले दो की ही होती है। ग्रह के उदयास्त साधन करने में स्थानीय ग्रह को समप्रोतवृत्त का करने के लिए स्पष्ट दृक्कर्म की आवश्यकता होती है। अत: उक्त कर्मों (ग्रह एवं नक्षत्र की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रहों के उदयास्त, चन्द्रश्रृंगोन्नति आदि साधन में) दृक्कर्म संस्कार किया जाना युक्तिसंगत है। दृक्कर्म किसे कहते है? दृश: कर्म: दृक्कर्म:। अर्थात् ग्रहों की वास्तविक स्थिति को दृश्य योग्य बनाने हेतु जो कर्म करते करते हैं, उसका नाम है – दृक्कर्म। यह मुख्यत: दो प्रकार का होता है – 1. अयन दृक्कर्म 2. आक्ष दृक्कर्म। ध्रुवप्रोत-समप्रोतवृत्त का अन्तर आक्ष दृक्कर्म तथा ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोत का अन्तर अयन दृक्कर्म कहलाता है। दोनों के संस्कार से स्फुट दृक्कर्म होता है।

दृक्कर्म साधन के लिए उपकरण –

कृत्वा दिन क्षपामानं तथा विक्षेपलिप्तिका:।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकाल्लग्नवशात्तयो:।।

युतिकाल के दोनों ग्रहों से अपनी-अपनी क्रान्ति के चर पलों से दिनमान एवं रात्रिमान करके, शर की कलायें साधित कर, सायन सूर्यादि ग्रह से एवं सायन लग्न से उन दोनों ग्रहों के नतोन्नत को साधित कर अलग रख लें। जैसे सायन सूर्य एवं लग्न से इष्टकाल साधित करते हैं, उसी तरह युतिकाल में भी सायन ग्रह एवं लग्न से इष्टकाल साधित कर यथासम्भव दिनगत, दिनशेष या उन्नत, उसको घटाकर दिनार्ध और नत को जानकर, इसी तरह रात्रि में भी नतोन्नत का ज्ञान कर रख लेना चाहिए।

आक्षदृक्कर्म साधन एवं संस्कार –

विषुवच्छाययाऽभ्यस्ताद् विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धं विभाजितम्।।
लब्धं प्राच्यामृणं सौम्ये विक्षेपे पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु विपर्यय:।।

पूर्वसाधित शर को पलभा से गुणाकर १२ का भाग दें जो भागफल आवे उससे पूर्वसाधित नत काल की घटियों को गुणा करें गुणनफल में दिन का गत काल होने पर दिनार्ध से एवं रात्रि का नतकाल होने पर रात्रयर्ध मान का भाग दें जो भागफल आवे उसी उत्तरीशर होने पर पूर्वकपाल में ऋण एवं पश्चिमी कपाल में धन तथा दक्षिणी शर होने पर पूर्वकपाल में धन एवं पश्चिमी कपाल में विपरीत अर्थात् ऋण करना चाहिए।

उपपत्ति: - गणितेन साधितो ग्रह: क्रान्तिवृत्तीयो राश्यादिको भवति। सूर्यातिरिक्त सर्वेग्रहा: वेधोपलब्धा: क्रान्तिवृत्ताच्छराग्रे स्व-स्वविमण्डले भ्रमन्ति। यदा क्रान्तिवृत्तस्थानामुदयास्तौ

भवतस्तदानीं शराग्रगतानामुदयोस्तौ। यदा क्रान्तिवृत्तस्थं ग्रहस्थानं क्षितिजमागच्छति तदा शराग्रस्थो ग्रह: क्षितिजादुपर्यधो वा शरवशाद्भवति। यदाकदम्ब स्थानं क्षितिजगतं स्यात्तदा कदम्बप्रोतवृत्तं क्षितिजवृत्तमेव भवति, तदा स्थानं बिम्बं च तुल्यकालमेवक्षितिजस्थे भवत:। अन्यथा कदम्बप्रोतवृत्तस्य क्षितिजादन्तरित्वाद् ग्रहगतकदम्बप्रोत सम्प्रोतवृत्तयोरन्तरं क्रान्तिवृत्ते। यत् तेन ग्रहोऽन्तरितो भवति। अतएव ग्रह गतकदम्ब समसूत्रयो: क्रान्तिवृत्ते यदन्तरं तस्यैव नाम दृक्कर्म:।

भास्करेणोक्तम्—

क्रान्तिवृत्ते ग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यत:।
स्वेषुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम्।।

दृक्कर्म द्विविधम्। तत्र प्रथमस्तु ध्रुव प्रोत–समप्रोतवृत्तयोरन्तरमाक्षजं दृक्कर्म:। द्वितीयस्तु ध्रुव प्रोतवृत्त–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरमायन दृक्कर्म भवति! अनयो: संस्कारेण समप्रोत–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरं स्पष्ट दृक्कर्म वलन तुल्यं भवति।

आक्ष दृक्कर्म:— क्रान्तिवृत्ते ध्रुवप्रोतवृत्त–समप्रोतवृत्तयोरन्तरे आक्ष दृक्कर्म कला:।

क्षेत्र परिचय: —

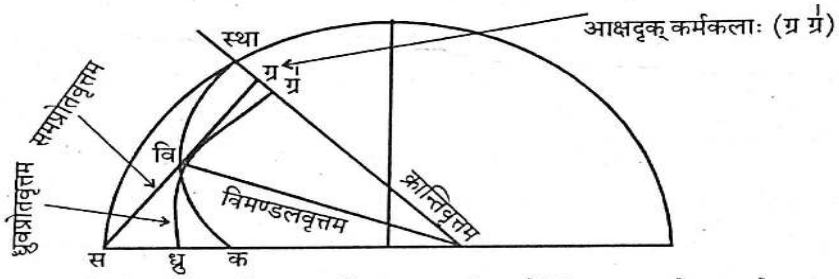

विमण्डलवृत्ते विं = ग्रह बिम्बम्। विमण्डलवृत्तीयग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतसमप्रोतवृत्तयो: क्रान्तिवृत्तेऽन्तरं – ग्र ग्रं – आक्षदृक्कर्म कला:।

बिम्बगत–समप्रोत–ध्रुवप्रोत वृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणस्याक्षवलन–कारणात् ज्या ∠ ग्र विं ग्रं = आक्षवलन ज्या। बिम्बगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं क्रान्ति वृत्ते यत्र लगति तत् ''ग्र'' स्थानं क्रान्तिवृत्ते आयनदृक्कर्मसंस्कृतग्रहस्थानम्। तेन ज्या ∠विं ग्र ग्रं = 'ग्र' ग्रहस्यायनवलन कोटिज्या। तत: ''वि ग्र ग्रं'' त्रिभुजे कोणानुपातेन ज्या ग्र ग्रं = ज्या आक्ष दृक् कर्म = $\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \angle\text{ज्या वि ग्र}}{\text{ज्या } \angle\text{वि ग्र ग्र}}$ =

$\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{को ज्या ग्र आयनवलन}}$ .....(१)

ज्या विं ग्रं = समप्रोतवृत्तीयशरज्या। शरकलानामत्यल्पत्वात् समप्रोत-ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोतवृत्तीयशरकलास्तुल्या एव स्वीक्रियन्ते तदा विं ग्रं = शरकला:।

लघुज्याविधिना शरज्या = ज्या विं ग्रं = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०}$ .....(२)

Scanned with CamScanner

पूर्वोक्त्या आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या स न}}{\text{द्यु}}$। अत्रापि ज्या स न = $\frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनमान} \times \text{द्युज्या}}$

$\frac{९० \times \text{न घ} \times २}{\text{दिनार्ध}}$। ∴ आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{दिनमान} \times \text{द्युज्या}}{२}$ .....(३)

यदि 'ग्र' ग्रहस्य द्युज्या = द्यु तदा ''द्युज्या–परमाल्प द्युज्या–ग्रह कोटिज्या'' इति चापज्या क्षेत्रे कोणानुपातेन कोटिज्या 'ग्र' आयनवलन = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$ .....(४)।

अतः २–३–४ एभिः स्वरूपैः (१) स्वरूप उत्थापिते ज्या.आक्ष दृक्कर्म = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \times \frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध} \times \text{द्युज्या}} \times \frac{\text{द्यु}}{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$।

यतो लघुज्याविधिना ज्या भक्ता अंशास्ते च षष्टिगुणाः कला भवन्तीत्यतः—

आक्ष दृक्कर्मकलाः = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २ \times \text{द्युज्या}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$।

यदि स्वल्पान्तरात् द्यु = द्यु। तथा त्रिज्या = १२०। तदा —

आक्षदृक्कर्मकलाः = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$ =

$\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{लम्बज्या} \times \text{न घ} \times १८०}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{लम्बज्या} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$। अत्र $\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या लं}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

∴ आक्षदृक्कर्म = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२} \times \frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$।

आचार्येण सूर्यसिद्धान्ते $\frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$ = १, स्वीकृतम्।

∴ आक्षदृक्कर्म कलाः = $\frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{१२ \times \text{दिनार्ध}}$।

अतः आक्षदृक्कर्म कलानयनमुत्पन्नम्।

CS Scanned with CamScanner

धनर्णोत्पत्तिः— यद्य ग्रहस्योचरीयशरो भवति तदा पूर्वकपाले उत्तरीध्रुव कारणात् समस्थानस्याधोगतत्वात् समप्रोतवृत्तात् क्रान्ति वृत्ते ध्रुव प्रोत वृत्तमधोगतो भवतीात्यतो ग्रहः प्रथमं समप्रोतवृत्ते पश्चाच्च ध्रुव प्रोतवृत्ते उदेतीत्यतः फलमृणं भवति। पश्चिम कपाले प्रथमं ध्रुव प्रोतवृत्ते पश्चाच्च समप्रोत वृत्ते उदेति, अतः परकपाले उत्तरे शरे धनं भवति।

दक्षिणे शरे दक्षिणध्रुवात् समस्थानमुपरिगतं भवति। तदा पूर्वकपाले प्रथमं ध्रुवप्रोतवृत्ते तदनन्तरं समप्रोतवृत्ते उदेति, पश्चिमे कपाले प्रथमं समप्रोत वृत्ते तदनन्तरं ध्रुवप्रोतवृत्ते ग्रहो उदेति, अतस्तत्र पूर्वकपाले धनं, पश्चिमकपाले च फलमृणं क्रियते। इति युक्ति रांगतम्।

दिखाई देने का कार्य ही दृक्कर्म होता है। गणित से साधित ग्रह क्रान्तिवृत्त का राश्यादि होता है। सूर्य के अलावा सारे ग्रह वेधोपलब्ध क्रान्तिवृत्त से शर से आगे अपने–अपने विमण्डलवृत्तों में भ्रमण करते हैं। जब क्रान्तिवृत्त में स्थान पर उदयास्त होता है तभी शराग्रगत का उदयास्त होता है। जब क्रान्तिवृत्त में स्थित ग्रह का स्थान क्षितिज पर आताहै तब शराग्रगतग्रह क्षितिज से ऊपर या नीचे शर के कारण से होता है। जब कदम्ब स्थान क्षितिजगत होता है तो कदम्ब प्रोतवृत्त ही क्षितिजवृत्त होता है, तब स्थान और बिम्ब एक साथ ही क्षितिज पर होते हैं। अन्यथा कदम्ब प्रोतवृत्त के क्षितिज से अन्तर पर होने से ग्रहगत कदम्ब प्रोतवृत्त एवं सम्प्रोत दोनों वृत्तों का अन्तर क्रान्तिवृत्त में उस ग्रह से अन्तर होता है। अतः ग्रहगत कदम्ब सूत्र एवं समसूत्रों का क्रान्तिवृत्त में जो अन्तर होता है उसे ही दृक्कर्म कहते हैं। इसीलिए भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि—

क्रान्तिवृत्त में ग्रहस्थान का जो चिह्न होगा, क्षितिज पर तब वह ग्रह नहीं होगा क्योंकि वह अपने शर द्वारा हटाया जाता है। इसीलिए ग्रह के उदयास्त में कुंजसूत्र से दृक्कर्म संस्कार किया जाता है।

दृक्कर्म संसार दो तरह का होता है। प्रथम दृक्कर्म ध्रुव प्रोतवृत्त एवं समप्रोतवृत्तों का अन्तर आक्ष दृक्कर्म होता है। दूसरा दृक्कर्म ध्रुवप्रोत वृत्त एवं कदम्ब प्रोतवृत्तों का अन्तर आयन दृक्कर्म होता है। इन दोनों के संस्कार से समप्रोत एवं कदम्ब प्रोतवृत्तों का अन्तर स्पष्ट दृक्कर्म वलन के समान होता है।

आक्ष दृक्कर्म— क्रान्तिवृत्त में ध्रुव प्रोतवृत्त–समप्रोत दोनों वृत्तों के बीच आक्षदृक्कर्मकला अन्तर के रूप में होती है।

क्षेत्र परिचय— विमण्डल वृत्त में विं = ग्रह बिम्ब है एवं विमण्डलवृत्त के ग्रह पर गये हुए ध्रुव प्रोत–समप्रोतवृत्तों का क्रान्तिवृत्त में अन्तर = ग्रं ग्रं = आक्षदृक्कर्मकला है।

Scanned with CamScanner

बिम्बगत समप्रोतवृत्त एवं ध्रुव प्रोतवृत्त दोनों से उत्पन्न कोण के आक्षवलन के कारण से ज्या∠विं ग्र ग्रं = ''ग्र'' ग्रह की अयन वलन कोटिज्या है। उस से ''वि ग्रं ग्र'' त्रिभुज में कोण के अनुपात से ज्या ग्र ग्र = ज्या आक्ष दृक्कर्म=

$$\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \angle\text{ज्या वि ग्र}}{\text{ज्या } \angle\text{वि ग्र ग्र}} = \frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{को ज्या ग्र आयनवलन}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

ज्या वि ग्र = समप्रोतवृत्त की शरज्या। शरकलाओं के अत्यन्त कम होने से समप्रोत ध्रुव प्रोत–कदम्ब प्रोत वृत्त की शरकलायें समान ही स्वीकार करते है। तो वि ग्र = शर कलाः।

$$\text{लघुज्या विधि से शरज्या} = \text{ज्या विं ग्र} = \frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \quad \ldots\ldots(२)$$

पूर्वोक्त आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या स न}}{\text{द्यु}}$। यहाँ पर भी ज्या स न = $\frac{९० \times \text{नतघटी} \times २}{\text{दिनार्ध}}$। ∴ आक्षवलन ज्या = $\frac{\frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनमान}}}{\text{द्युज्या}}$ $\ldots\ldots\ldots(३)$

यदि 'ग्र' ग्रह की द्युज्या = द्यु तो ''द्यु ज्या – परमाल्पद्युज्या – ग्रहकोटिज्या' इस चापज्या क्षेत्र में कोणानुपात से कोटिज्या 'ग्र' आयनवलन = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्पद्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$ $\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(४)$।

अतः २,३,४ इन स्वरूपों को १ स्वरूप में स्थापित करने पर ज्या आक्ष दृक्कर्म =

$$\frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \times \frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध} \times \text{द्युज्या}} \times \frac{\text{द्यु}}{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्य द्युज्या}}।$$

क्योंकि लघुज्या साधन की विधि से ज्या में २ का भाग देने से अंश होते हैं उन्हें ६० से गुणा करने पर कलायें होती हैं अतः—

$$\text{आक्ष दृक्कर्मकलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २ \times \text{द्युज्या}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}।$$

यदि स्वल्पान्तर से द्यु = द्यु। तथा त्रिज्या = १२० हो तो —

$$\text{आक्षदृक्कर्मकला} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} =$$

Scanned with CamScanner

$$\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{लम्बज्या} \times \text{न घ} \times १८०}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{लम्बज्या} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$$ । यहाँ $\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या लं}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

$$\therefore \text{आक्षदृक्कर्म} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२} \times \frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$$ ।

आचार्येण सूर्यसिद्धान्ते $\frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} = १$, स्वीकृतम्।

$$\therefore \text{आक्षदृक्कर्म कलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{१२ \times \text{दिनार्ध}}$$ ।

यह आक्षदृक्कर्म कला के साधन की उत्पत्ति हुई।

धन एवं ऋण की उत्पत्ति— जब ग्रह का उत्तरी शर हो तों वह पूर्व कपाल में उत्तरी ध्रुव होने के कारण सम स्थान के नीचे जाने के कारण समप्रोतवृत्त से क्रान्तिवृत्त में ध्रुव प्रोतवृत्त नीचे गया होता है अतः ग्रह पहले समप्रोतवृत्त में और बाद में ध्रुव प्रोतवृत्त में उदय होता है अतः फल ऋण होता है। पश्चिम कपाल में होने से पहले ध्रुव प्रोतवृत्त में और बाद में समप्रोतवृत्त में उदित होता है अतः पश्चिमी कपाल में उत्तरी शर होने पर फलधन करते हैं।

दक्षिणी शर होने पर दक्षिण ध्रुव से समस्थान ऊपर गत होता है। तब पूर्व कपाल में प्रथम ध्रुव प्रोतवृत्त में और उसके बाद समप्रोतवृत्त में उदित होता है। पश्चिम कपाल में होने पर पहले समप्रोतवृत्त में औश्र उसके बाद ध्रुव प्रोतवृत्त में ग्रह उदित होता है। अतः वहाँ पूर्वकपाल में धन एवं पश्चिम कपाल में फल को ऋण किया जाता है। ऐसा कथन तर्कसंकत है।

आयन दृक्कर्मानयन कथनम्—

सत्रिभग्रहजक्रान्ति – भागघ्नाः क्षेप लिप्तिकाः।
विकलाः स्वमृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययोः॥१०॥

सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागाः= स्पष्टग्रहे त्रिराशियोजनेन यः भवति तद्वशात् तस्य क्रान्तिसाध्याः। तस्य ये क्रान्त्यंशाः भवन्ति तेऽयनवलनांशाः भवन्ति। तेन अयनवलनांशैः घ्नाः क्षेपलिप्तिकाः=ग्रहस्य शरकलाः गुणिताः फलं विकलाः=आयनदृक्कर्मविकलाः भवन्ति। क्रान्ति क्षेपयोः भिन्न दिक्त्वे स्वम्=धनं, तुल्ययोः= क्रान्तिक्षेपयोः एकदिकत्वे सति ऋणं ''आयनदृक्कर्म विकलाः'' क्रियन्ते।

स्पष्ट ग्रह में ३ राशि जोड़ने पर जो आवे उसकी क्रान्ति साधन करें। जो क्रान्त्यंश आवें वे ही अयन वलनांश होते हैं। उन अयनवलनांशों से ग्रह की

Scanned with CamScanner

शरकलाओं को गुणा करें, गुणनफल आयनदृक्कर्म की विकला होंगीं। यदि क्रान्ति एवं शर अलग–अलग दिशाओं के हों तो इन आयन दृक् कर्म विकलाओं को जोड़ा जाता है तथा क्रान्ति एवं शर दोनों एक ही दिशाओं के हों तो इन आयन दृक् कर्म की विकलाओं को ऋण किया जाता है।

उत्पत्तिः— ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरं क्रान्तिवृत्तेऽयनदृक्कर्मे विकलाः भवन्ति। क्षेत्रम्—

क्षेत्रम्—

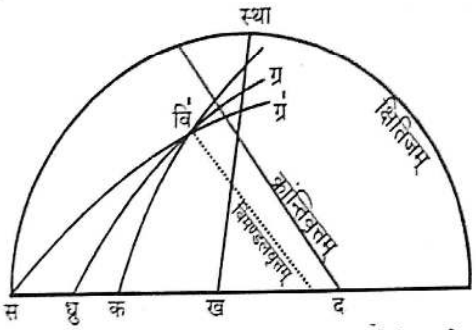

क्षेत्रे — स्था=ग्रह स्थानम्। ग्र=आयन दृक्कर्मसंस्कृतो ग्रहः। स्था ग्र=क्रान्तिवृत्तेआयनदृक्कर्म। ∠स्था विं ग्र=आयनवलनम्। ∠विं ग्र स्था = आयन वलन कोटिः। ∠विं स्था ग्र = ९०° । विं स्था = शरकलाः। स्वल्पान्तरात् विं स्था = विं ग्र तदा विं ग्र = शरकला। ततः विं स्था ग्र त्रिभुजे कोणानुपातेन ज्या स्था ग्र = ज्या आयन दृक् = $\frac{\text{शरज्या}\times\text{आयन वलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ । परन्तु लघुज्या विधिना शरज्या = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०}$ । तथा आयनवलनज्या = सत्रिभग्रहकान्त्यंशा×२। त्रिज्या=१२०। अतः आयनदृक्कर्मज्या = $\frac{२ \times\text{शरकला} \times २\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}}{६० \times १२०}$ । ज्या द्विभक्ता अंशास्ते च षष्टिवर्गगुणास्तदा विकला भवन्तीत्यतः—

आयनदृक्कर्म विकलाः = $\frac{२ \times २ \times\text{शरकला} \times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ३६००}{२ \times६० \times १२०}$ =

$\frac{\text{शरकला} \times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ७२००}{७२००}$ = शरकला × सत्रिभग्रहकान्त्यंशा। अत उत्पन्नमायनदृक्कर्मसाधनम्।

अथधनर्णतोत्पत्तिः— ग्रहस्यायनं मकरादि षडराशित्वादुत्तरं तदा शरोऽप्युत्तरस्तदा कदम्ब स्थानं ध्रुवात् दक्षिणे, क्रान्तिवृत्तश्च विमण्डलवृत्ताद्दक्षिणे भवतीत्यतः क्रान्तिवृत्ते कदम्बप्रोतीयस्थानतो ध्रुव प्रोतीयस्थानं पश्चिमतो भवति। तत्र

Scanned with CamScanner

स्थानीयग्रहे आयनदृक् कर्म विकलानां वियोगेन ध्रुवप्रोतवृत्तीय ''आयन दृक्कर्म संस्कृतो ग्रहो भवति। अनेनैव प्रकारेण कर्कादिषऽराशौ दक्षिणायने दक्षिणे शरेऽपि ध्रुवादुत्तरे कदम्बस्थाने क्रान्तिवृत्ते ग्रहस्थानादायन दृग्ग्रहस्थ पश्चिमगतत्वात् फलमृणमेवोपपद्यते।

यदि उत्तरायणं शरो दक्षिणस्तदा ध्रुवात् कदम्ब स्थानं दक्षिणे, क्रान्तिवृत्तात विमण्डल वृत्तं च दक्षिणेऽतः क्रान्तिवृत्ते कदम्बप्रोतवृत्तस्य पूर्वतः स्थित्वादायनदृक्कर्म विकलाः स्थानीय गृहे धनं भवतीति स्पष्टमेव। अतः अयन शरयोरेकदिक्त्वे फलमृणं, भिन्न दिक्त्वे च धनमुपपन्नम्। यतः ग्रहनिष्ठायनतुल्यैव सत्रिभग्रहगोलदिशाभवति, अतः सत्रिभग्रह क्रान्तिविक्षेपयोर्भिन्नतुल्यदिशोरायन-दृक्कर्म फलं स्वमृणत्वकरणमुचितमेवेत्युत्पन्नम्।

ग्रह पर गया हुआ ध्रुव प्रोत वृत्त एवं कदम्ब प्रोत दोनों वृत्तों का अन्तर क्रान्तिवृत्त में आयन दृक्कर्म की विकला होती है।

चित्र में स्था=ग्रह का स्थान, ग्र=आयनदृक्कर्म संस्कृतग्रह, स्था ग्र=क्रान्तिवृत्त में आयन दृक् कर्म, ∠स्था विं ग्र = आयनवलन है। ∠विं ग्र स्था = आयनवलन कोटि, ∠विं स्था ग्र= ९०° तथा विं स्था शरकलायें हैं। स्वल्पान्तर से विंस्था = विं ग्र तो विं ग्र= शरकला हैं। विं स्था ग्र त्रिभुज में कोणानुपात से ज्या स्था ग्र = आयन दृक्ज्या = $\frac{\text{शरज्या}\times\text{आयन वलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$। लेकिन लघुज्या साधन को विधि से शरज्या = $\frac{\text{शरकला}\times २}{६०}$। तथा आयनवलनज्या = ३ राशि + ग्रह की क्रान्ति के अंश×२ । त्रिज्या=१२०। अतः आयनदृक्कर्मज्या = $\frac{२\times\text{शरकला}\times२\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}}{६०\times १२०}$। ज्या में २ का भाग देने से अंश होंगें उन्हें ६० के वर्ग (६०×६०=३६००) से गुणा करने पर विकला होती है। अतः आयनदृक्कर्म विकला =

$\frac{२\times२\times\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ३६००}{२\times६०\times १२०}$ =

$\frac{\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times ७२००}{७२००}$ = शरकला × सत्रिभग्रहकान्त्यंश। अतः आयन दृक्कर्मसाधन उत्पन्न हुआ।

धन एवं ऋण करने की उत्पत्ति— ग्रह मकरादि ६ राशियों में उत्तरायण में होने से शर भी उत्तरी होने से कदम्ब स्थान ध्रुव से दक्षिण में एवं क्रान्तिवृत्त विमण्डलवृत्त से दक्षिण में होता है, अतः क्रान्तिवृत्त में कदम्बप्रोत के स्थान से

Scanned with CamScanner

ध्रुवप्रोत का स्थान पश्चिम की ओर होता है। जिससे उस स्थान पर होने वाले ग्रह से आयनदृक्कर्म की विकलाओं को घटाने से ध्रुवप्रोतवृत्त का आयन दृक्कर्म से संस्कृत ग्रह होता है। इसी तरह कर्कादि दक्षिणायन में शर के होने पर भी ध्रुव से उत्तर में कदम्ब के होने पर क्रान्तिवृत्त के स्थान से आयनदृक् ग्रह के पश्चिम में गये होने के कारण फल को ऋण करना उत्पन्न होता है। यदि उत्तरी अयन हो एवं शर दक्षिणी हो तो ध्रुव से कदम्ब दक्षिण में होने से क्रान्तिवृत्त से विमण्डलवृत्त भी दक्षिण में होता है। अत: क्रान्तिवृत्त में कदम्ब प्रोतवृत्त से पूर्व की ओर स्थिर होने से आयनदृक्कर्म की विकलाओं को स्थानीय ग्रह में जोड़ा जाता है यह गोलज्ञों को स्पष्ट ज्ञात है। इसीलिए आयन एवं शर के एक दिशा में होने से फल को ऋण करना तथा अलग-अलग दिशाओं के होने पर योग करना उत्पन्न होता है। क्योंकि ग्रह एवं अयन के समान दिशा के होने से ही सत्रिभग्रहगोल दिशा होती है, अत: सत्रिभग्रह क्रान्ति एवं शर के भिन्न –भिन्न दिशाओं के एवं एक ही दिशाओं के होने पर आयन दृक्कर्म के फल को क्रमश: धन एवं ऋण करना सिद्ध होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. दृश: सम्बन्धि कर्म:?
   क. दृश्य: ख.दृश्यम् ग.दृक्कर्म: घ. अयन दृक्कर्म
2. मुख्यत: दृक्कर्म कितने प्रकार के होते हैं?
   क. १ ख. २ ग. ३ घ. ४
3. गणित द्वारा साधित ग्रह किस वृत्त का होता है?
   क. नाड़ी ख. क्रान्ति ग. अहोरात्र घ. उन्मण्डल
4. ध्रुवप्रोत समप्रोत वृत्त का अन्तर क्या कहलाता है।
   क. आक्ष दृक्कर्म ख. अयन दृक्कर्म ग. स्फुट दृक्कर्म घ. कोई नहीं
5. ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोत वृत्त का अन्तर क्या होता है।
   क. स्फुट दृक्कर्म ख. अयनदृक्कर्म ग. आक्षदृक्कर्म घ. इनमें सभी

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि नक्षत्र एवं ग्रह की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रह के उदयास्त साधन में, चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन में दृक्कर्म का संस्कार यथासम्भव पहले ही कर लेना चाहिये, ऐसा पूर्व में में बतलाया गया है। इसका आशय है कि दृक्कर्म से संस्कार किये जाने पर ही नाक्षत्र एवं ग्रह तथा दो ग्रहों की युति का भी विचार किया जाता है।

गणितीय दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त स्थान से शराग्रगत दोनों की युति तो एक कदम्ब प्रोतवृत्त दोनों होने

पर ही उनके अन्तर का अभाव होता है। क्रान्तिवृत्त में तिरछे रूप में कदम्ब प्रोतवृत्त होता है। परन्तु कदम्ब की दोनों तारायें अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई न दे पाने से विपुलताराश्रित ध्रुवप्रोतवृत्त में दोनों के गये हुए होने से ही भास्करादि ने उनकी युति ध्रुवप्रोतवृत्त में कही है, अत: ग्रहों की युतियों में केवल आयनदृक्कर्म की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक युति तो उन दोनों की (नक्षत्र एवं ग्रह की अथवा दोनों ग्रहों की) कदम्ब सूत्र में स्थित होने पर ही होती है। भास्कराचार्य का भी यही कथन है। वासना भाष्य इसलिए कहा है – कदम्ब में प्रसिद्ध ताराओं का अभाव होने से देखने वाले को इस युति की प्रतीति नहीं हो पाती अत: ध्रुव सूत्र में ही युति कही है। युति प्राय: कदम्ब सूत्र में स्थित होने वाले दो की ही होती है। ग्रह के उदयास्त साधन करने में स्थानीय ग्रह को समप्रोतवृत्त का करने के लिए स्पष्ट दृक्कर्म की आवश्यकता होती है। अत: उक्त कर्मों (ग्रह एवं नक्षत्र की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रहों के उदयास्त, चन्द्रश्रृंगोन्नति आदि साधन में) दृक्कर्म संस्कार किया जाना युक्तिसंगत है। दृक्कर्म किसे कहते है? दृश: कर्म: दृक्कर्म:। अर्थात् ग्रहों की वास्तविक स्थिति को दृश्य योग्य बनाने हेतु जो कर्म करते करते हैं, उसका नाम है – दृक्कर्म। यह तीन प्रकार का होता है – 1. अयन दृक्कर्म 2. आक्ष दृक्कर्म 3. स्पष्ट दृक्कर्म।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

दृक्कर्म – दृश: कर्म: दृक्कर्म:।

आक्षदृक्कर्म – ध्रुवप्रोत-समप्रोतवृत्त का अन्तर आक्ष दृक्कर्म होता है।

अयन दृक्कर्म – ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोत वृत्त का अन्तर आयन दृक्कर्म कहलाता है।

स्फुट दृक्कर्म – अयनाक्ष दृक्कर्म के संस्कार करने पर स्पष्ट दृक्कर्म होता है।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

नाड़ीवृत्त- ध्रुवस्थान से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ग 2. ख 3. ख 4. क 5. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दृक्कर्म से आप क्या समझते हैं।
2. दृक्कर्म का प्रयोजन लिखिये?
3. अयन दृक्कर्म से क्या तात्पर्य है।
4. आक्ष दृक्कर्म का साधन कीजिये।
5. दृक्कर्म का साधन एवं संस्कार की उपपत्ति सहित वर्णन कीजिये।

खण्ड- 3
ग्रहण विचार

इकाई 1 ग्रहण विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ग्रहण परिचय

1.3.1 ग्रहण अवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव

1.3.2 ग्रहण फल एवं शान्ति

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N) -302 के पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहण परिचय। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ग्रहण' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहण' सिद्धान्त ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियो के साथ-साथ आम जनमानस को भी इस शास्त्र के प्रति और विश्वास बढ़ जाता है। सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहण एक खगोलीय घटना है, जो आकाश में ग्रह (सूर्य-चन्द्र एवं पृथ्वी) पिण्डों के परस्पर कारण से घटित होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहण' के बारे में उसकी गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहण को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहण के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहण' लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- ग्रहण में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।
- ग्रहण के गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को समझ लेंगे।

1.3 ग्रहण परिचय

ज्योतिष शास्त्र को उसके अध्येताओं के साथ-साथ आम जनमानस के लिए भी श्रद्धा के शिखर पर स्थापित करने में सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत वर्णित **'ग्रहण'** का प्रमुख स्थान है। आश्चर्योत्पादित प्रतिभा के द्वारा हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विधा के अन्तर्गत इस खगोलीय घटना की परिगणना की वस्तुत: वह आज भी प्रासंगिक है, इसमें कोई संशय नहीं। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (५/४०/५/९) में ग्रहण के विषय बताये गये है। जगत्स्रष्टा भगवान ब्रह्मा ने समस्त सृष्टि की रचना करके इस ब्रह्माण्ड को गतिमान करने के लिए भगवान सूर्य को नियुक्त किया। भगवान सूर्य के

रश्मियों से प्रकाशित समस्त ग्रह सहित ज्योतिष्मान् पिण्ड सतत् अपनी गति, स्थिति, प्रकृति तथा प्रभाव से इस समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित कर रहे हैं। पृथ्वी से कोशो दूर स्थित हमारे ग्रहमण्डल की स्थितियों का छोटे-छोटे यन्त्रों (लकड़ी, हाथी दाँत, बेंत सूत्रादि) की सहायता से जिस प्रकार ज्ञान किया गया, यह आज भी विज्ञान के लिए चुनौति बना हुआ है। आज के आधुनिक वैज्ञानिक भी हमारे सिद्धान्त ज्योतिष की सत्ता स्वीकार कर उसको आदि विज्ञान की संज्ञा देते हैं तथा प्रथम अन्तरिक्ष वैज्ञानिक आर्यभट्ट के नाम पर सर्व सहमति भी व्यक्त करते हैं। 'ग्रहण' एक खगोलीय घटना है जिसका प्रभाव ज्योतिष शास्त्र में वृहद् रूप में अंकित किया गया है। सामान्य तर्क के द्वारा हम ग्रहण प्रभाव को परिकल्पित करते हैं कि प्रतिदिन गर्मी के मौसम में सामान्य दिन हो रहा हो परन्तु यदि १ दिन तापमान २° हो जाये तो ऐसे प्राकृतिक प्रभाव का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव होगा? हाँ हमलोगों में से अधिकांश को कुछ नहीं होगा परन्तु कुछ लोग बीमार पड़ जायेंगे। यदि सामान्य सी स्थिति हमारे शारीरिक स्थिति पर इतना प्रभाव डाल सकती है तो ऐसी स्थिति जिसमें हम शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की ऊर्जा को ग्रहण करते हैं, भला कैसे प्रभावी नहीं होगी। दिन में रात्रि या उजाले में अन्धकार की प्रवृत्ति निश्चित रूप से जगत् को प्रभावित करेगी।

हमारे प्राचीन महर्षियों (ज्योतिर्विदों) ने सिद्धान्त स्कन्ध में बताया है कि सामान्यतया ग्रहण (एक ग्रह बिम्ब के द्वारा दूसरे ग्रह बिम्ब का ढका जाना) अनेकों आकाश में होते रहते हैं परन्तु रवि एवं चन्द्र का ग्रहण हमारे जगत् को विशेष रूप से प्रभावित करता है, इसलिए इनके ग्रहण की आनयन विधि तथा विविध प्रकार का क्षेत्रात्मक फल या प्रभाव भी वर्णित किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के स्कन्धत्रय में ग्रहण की परिचर्चा है। सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत ग्रहण गणना को बताया गया है तथा व्यक्ति पर ग्रहण के प्रभाव को होराशास्त्र में तथा सामूहिक एवं समष्टिगत प्रभाव की गणना संहिता ग्रन्थों में विस्तार से किया गया है।

आज का विकसित विज्ञान (खगोल) भी ग्रहण को चमत्कारिक घटना तथा दुष्प्रभाव युक्त स्वीकार किया है। कुछ समय पूर्व में ग्रहण काल में गृहीत ग्रह का दर्शन निषिद्ध था परन्तु कुछ दिन बाद ग्रहण को देखने के लिए चश्मा, दूरबीन या एक्सरे आदि उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार विज्ञान अपनी शोध की उपलब्धि के आधार पर विभिन्न तरह के शोधन- परिशोधन के साथ प्राकृतिक घटनाओं तक पहुँचने का सफल प्रयत्न करता है, परन्तु इसके गर्भ में विद्यमान गणना से परे इतने प्रश्न हैं जिनका सीधा उत्तर या परिगणना अनुपलब्ध एवं अनुत्तरित है। प्रकृति अपने अनुरूप घटनाओं को जन्म देती है तथा दार्शनिक भाषा में उसे स्वयं अपने में समेट कर उसका उपसंहार भी करती रहती है। प्रकृति को पढ़ने में जितने सहायक हमारे प्राचीन महर्षि हुए, शायद उतना सामर्थ्य

जुटाना असंभव सा प्रतीत होता है। ऐसे अनेकों प्रश्न या घटना खगोलीय अनुसन्धान के द्वारा हमारे अल्प जीवन में दिखें जिनके प्रभाव को लेकर तरह- तरह की चर्चायें संसार में होती रहीं परन्तु स्वयं उसका समाधान भी हो गया और हम देखते रह गये।

ग्रहण, ब्रह्माण्डस्थ ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के परस्पर संयोग से होने वाली एक ऐसी अद्भुत एवं विस्मयकारी आकाशीय घटना है जिसके द्वारा वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों जगत् प्रभावित होते हैं। एक ओर वैज्ञानिक वर्ग जहाँ इसके द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति को जानने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत् से सम्बद्ध लोग इस काल के अतीव पुण्यदायक होने से चतुर्विधपुरूषार्थों के प्रत्येक अवयवों की पुष्टि हेतु वेद-विहित कर्मानुष्ठान-स्थान-दान एवं होम आदि करते हुए परा एवं अपरा विद्या के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाते हैं। सामान्यतया आकाश में विद्यमान सभी ग्रहर्क्षादि पिण्डों के ग्रहण होते हैं, परन्तु प्रत्यक्षतया भूपृष्ठ पर प्रभाव डालने एवं जन-सामान्य के द्वारा नग्न चक्षु से सरलतया दृष्ट होने के कारण सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहण ही ग्रहण के रूप में जाना जाता है तथा सौरमण्डल के इस भूपृष्ठ पर विद्यमान लोगों के लिए महत्वपूर्ण होता है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है क्योंकि अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा का परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है तथा उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में स्थित भूपिण्डस्थ जनों के समक्ष सूर्य किरणों के संसर्ग से प्रकाशित चन्द्रपिण्ड का उज्ज्वल भाग पूर्ण बिम्ब रूप में दिखाई पड़ता है परन्तु उक्त स्थिति में जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में पात के आसन्न होता है तब पृथ्वी द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध होने से जो भूमि की छाया बनती है वह भी स्वविरूद्ध दिशा में १८० अंश पर द्वितीय पात के आसन्न सूर्य एवं चन्द्र कक्षाओं से होकर ही आगे तक जाती है। अत: अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा उस भूभा में प्रविष्ट होकर ग्रहण ग्रस्त हो जाता है। इसलिएइसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने लिखा है कि सपात सूर्य का भुजांश जब १४° से न्यून होता है, तब चन्द्रग्रहण की सम्भावना होती है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है –

'सपातसूर्यस्य भुजांशका यदा मनूनका: स्याद् ग्रहणस्थ सम्भव:।।'

आधुनिक वैज्ञानिकों के मत में चन्द्रमा की कक्षा सूर्य की कक्षा के अपेक्षा ५° अवनति के कारण संयोगवश पूर्णिमा काल में चन्द्रग्रहण की स्थिति उत्पन्न होती है। सूर्यग्रहण में सूर्य एवं चन्द्रमा एक कदम्बप्रोत वृत्तगत होकर अपनी-अपनी कक्षाओं में राश्यादि मान से समान होते हैं, क्योंकि '**दर्श: सूर्येन्दुसंगम:**' के अनुसार सूर्य एवं चन्द्रमा का राश्यादि मान से समान होना ही अमान्त का लक्षण

है। अत: उक्त स्थिति में सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य चन्द्रमा की स्थिति होने से पातासन्न सूर्यबिम्ब का चन्द्रबिम्ब से अवरोध उत्पन्न होने के कारण ग्रहण की स्थिति बनती है। सूर्यग्रहण के सम्भावना काल को प्रतिपादित करते हुए आचार्य भास्कराचार्य ने लिखा है - ''पाताढयार्कभुजांशका यदि नगोनास्स्युस्तदार्कग्रह:'' अर्थात् जब सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून होगा तो सूर्यग्रहण की स्थिति बनेगी। वास्तविक रूप में सूर्यग्रहण काल में चन्द्रपिण्ड द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध से जो चन्द्रमा की छाया सूर्य के विरूद्ध दिशा में पड़ती है। उसके द्वारा भूपिण्ड का ही ग्रहण होता है परन्तु उस छाया के अन्तर्गत स्थित वासियों के लिए ही सूर्य के अदृश्य होने से सूर्यग्रहण कहा जाता है। आचार्य कमलाकर भट्ट ने सूर्यग्रहण को पृथ्वी का ग्रहण कहा है। यह ग्रहण छादक द्वारा बिम्ब के अवरूद्ध होने से सार्वदेशिक नहीं होता है परन्तु चन्द्रग्रहण में छाद्य चन्द्रबिम्ब के स्वयं भूभा में प्रविष्ट हो जाने के कारण चन्द्रग्रहण एक कालावच्छेदेन सार्वदेशिक होता है।

1.3.1 ग्रहण की अवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव -

ग्रहण की पाँच अवस्थाएँ होती है –

1. स्पर्श 2. सम्मीलन 3. मध्य 4. उन्मीलन 5. मोक्ष

ग्रहण स्वरूप –

ग्रहण के चार स्वरूप होते है – खण्ड, पूर्ण, खग्रास तथा वलय।

ग्रहण के प्रभाव को हम तीन वर्गों में विभाजित करके विवेचना कर सकते हैं -

क. व्यक्तिगत प्रभाव – ग्रहण के प्रभाव को प्राय: सभी शास्त्रकारों ने अशुभ माना है। यदि कोई भी व्यक्ति ग्रहण को देखता है तो उसके लिए शास्त्रकारों ने हितकर नहीं बताया है। प्रत्येक मनुष्य पर ग्रहण के दुष्प्रभाव को प्राचीन आचार्यों ने अपनी-अपनी अन्वेषण पद्धति से पृथक्-पृथक् परिगणित किया है। आचार्य हारीत ने बताया है कि जिस भी व्यक्ति के जन्मनक्षत्र में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण होता है तो उसे हानि, शत्रुता तथा तिरस्कार प्राप्त होता है। आचार्य रामदैवज्ञ ने लिखा है कि जिसके जन्मनक्षत्र में ग्रहण होता है उसकी आयु में संकट उत्पन्न होता है तथा निम्नलिखित फल की प्राप्ति जन्म राशि के क्रम से प्राप्त होती है। यथा –

राशि	**फल**
जन्मराशि	पीड़ा
दूसरी	क्षति
तीसरी	धन लाभ

चौथी	शरीर पीड़ा
पॉचवी	पुत्रादि चिन्ता
छठी	सुख
सातवीं	पत्नी मरण
आठवी	मरण
नवीं	सम्मान नाश
दसवीं	सुख
ग्यारहवीं	लाभ
बारहवीं	मृत्यु, द्रव्यनाश

यहाँ अन्त में बताया गया है कि कुछ आचार्यों के मत में यदि हम ग्रहण न देखें तो यह अशुभ फल नहीं प्राप्त होता है। पीयूषधारा टीकाकार श्री गोविन्द दैवज्ञ ने बताया है कि दैवज्ञ मनोहर नामक ग्रन्थ में भी इस प्रकार ही फल बताया गया है, परन्तु अन्त में कहा गया है कि गर्गादि आचार्यों का मानना है कि यदि ६ मास के भीतर दूसरा ग्रहण संभव हो तो पूर्वग्रहण का दूषित फल शुभफल में परिवर्तित हो जाता है। आचार्य लल्ल ने बताया है कि ग्रहण का प्रभाव व्यक्तियों पर तीन तरह का होता है। प्रथम जिस राशि में ग्रहण हो उससे ३,८,४,११ स्व राशि होने पर शुभ तथा दूसरा ५,९ स्वराशि हो तो मध्यम तथा तीसरा १,६,२,७ स्वराशि हो तो ग्रहण का दूषित फल होता है। आचार्य गर्ग ने कुछ भिन्न प्रभाव का निरूपण किया है जिसमें स्वराशि ८,११,४,३ हो तो शुभ, १२,५,९,७ हो तो मध्यम तथा ६,२,१०,१ हो तो दूषित फल बताया है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की राशि अलग-अलग होती है अतएव ग्रहण काल का दूषित रश्मिजन्य प्रभाव भी हमारे उपर पृथक्-पृथक् अनुभव किया जाता है, जिसको हमारे प्राचीन महर्षियों ने अपने-अपने शोध के आधार पर व्यक्त किया है। ग्रहणग्रस्त राशियाँ या नक्षत्र प्राय: सभी आचार्यों की दृष्टि में निन्द्य हैं। परन्तु कुछ स्थानों में मतान्तर का कारण कालजन्य या स्थानजन्य अन्तर संभव हो सकता है, क्योंकि दोनों प्रकार के ग्रहणों का संकलन कर यहाँ व्यक्तिगत प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। जिसमें स्थान को आधार मानकर कोई विभाजन नहीं किया गया है।

2. सामूहिक प्रभाव – विशेषरूप से ग्रहण के सामुहिक का ही वर्णन प्राचीन ग्रन्थों एवं पुराणों में प्राप्त होता है। महाभारत में पाया जाता है कि –

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तौ एकमासीं त्रयोदशीम्।

अपर्वणि ग्रहावेतावुत्पातं जनयिष्यत:।।

अर्थात् ऐसे ग्रहण काल में उत्पात अवश्य होगें। इस प्रकार के ग्रहण का आख्यान गोपथ ब्राह्मण २/३/१९ तथा शतपथ ब्राह्मण ५/३/२/२ एवं तैतरीय ब्राह्मण ४/२ में प्राप्त होता है। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में बताया है कि यदि एक ही मास में रवि एवं चन्द्र दोनों का ग्रहण हो तो राजा के सेना में विद्रोह तथा कोश एवं शस्त्र नाश होता है। इस प्रकार वशिष्ठ संहिता में बताया गया है कि यदि उत्तरायण में सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो तो विप्र, सज्जन एवं राजा की हानि होती हैं। वशिष्ठ संहिता के ही ६ पर्वों के आधार पर पृथक्-पृथक् अशुभ फलों को बताया गया है। अद्भुतसागर के राहोर्द्भूतावर्त्त: में बताया गया है कि एक विसन्धिग्रहण या प्राकृत ग्रहण होता है जिसमें सर्वाधिक क्षति की संभावना होती है। ग्रहण के समय में उत्पात उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, धूलिवर्षण आदि दिखाई दे तो पुन: ग्रहण तथा अशुभदायक माना गया है। यथा –

चन्द्रग्रहण काल में प्रबल वायु हो तो -६ मास में ग्रहण – अशुभ फल,

चन्द्रग्रहण काल में उल्कापात हो तो -१२ मास में ग्रहण – शस्य नाश,

चन्द्रग्रहण काल में धूलिवर्षण हो तो -१८ मास में ग्रहण – मृत्यु,

चन्द्रग्रहण काल में भूकम्प हो तो -२४ मास में ग्रहण – हानि,

चन्द्रग्रहण काल में अन्धकार हो तो – ३० मास में ग्रहण – राजनाश,

चन्द्रग्रहण काल में वज्रपात हो तो – २६ मास में ग्रहण – अतिवृष्टि

पूर्वोक्त सभी हो तो ६-६ अन्तर पर ग्रहण – विविध उत्पात,

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. 'ग्रहण' होरा ज्योतिष का विषय है।
2. भूसापेक्ष चाक्षुषदृष्ट्या ग्रहण मुख्यत: दो प्रकार के होते है।
3. ग्रहण की कुल पाँच अवस्थायें होती है।
4. सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून हो तो चन्द्रग्रहण की स्थिति बनती है।
5. सूर्य एवं चन्द्रमा परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है।
6. ज्योतिषशास्त्र के मुख्यत: तीन स्कन्ध हैं।
7. 'उपराग' ग्रहण का पर्याय है।

इस प्रकार ही ग्रहण के स्पर्श तथा मोक्षकालिक स्थितियों के द्वारा भी विविध प्रकार का फल बताया गया है। जिसके अन्तर्गत सामूहिक फल ही अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। आचार्य भार्गव ने लिखा है कि दृश्य आकाश को तीन भागों में विभक्त कर और दिनमान तथा रात्रिमान के द्वारा भी विभागत्रय कर दिन या रात्रि के ग्रहण का आकाश में भाग का ज्ञान कर पृथक्-पृथक् फल बताया है। इस प्रकार वृद्धगर्ग ने ७ खण्ड आकाश का किया है और निम्नलिखित फल बताया है –

प्रथम खांश- गायों की हानि,

द्वितीय खांश – विप्रों की हानि,

तृतीय खांश – क्षत्रियों की हानि,

चतुर्थ खांश – सभी लोगों का नाश,

पंचम खांश – वैश्यों का नाश,

षष्ठ खांश – शूद्र एवं स्त्रियों का नाश,

सप्तम खांश – अन्त्यज जातियों का नाश,

वरूणादि मण्डल में ग्रहण का शुभाशुभ प्रभाव का प्रतिदान वृहत्संहिता में विस्तार से किया गया है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय मुहूर्त्त एवं संहिता से सम्बन्धित प्राय: सभी ग्रन्थों में सामूहिक ग्रहण प्रभाव की परिचर्चा अवश्य छोटे या बड़े रूप में प्राप्त होती है।

ग. स्थानीय प्रभाव - ज्योतिषशास्त्र एक वैज्ञानिक शास्त्र है। प्रत्येक परिस्थितियों का विश्लेषण करना इसका पुनीत एवं मंगल कार्य है। काल की गणना तथा कालजन्य विकृतियों का खण्ड-खण्ड कर उसका विश्लेषण तथा दोष शमन उपाय प्रत्येक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में अवश्य प्राप्त होता ही है। भचक्र में गतिमान रवि-चन्द्र ग्रहण निश्चित रूप से अमावस्या तथा पूर्णिमा को ही होगा परन्तु मास का निश्चय नहीं है कि यह ग्रहण अमुक मास में ही पतित होगा ऐसी परिस्थिति में जिसकी नक्षत्र में यह ग्रहण होता है तो संहिता के परम्परा के अनुसार कूर्मविभाग द्वारा उस नक्षत्र से सम्बन्धित देश, स्थानादि का निर्धारण करते हैं तथा उस स्थान विशेष पर उस ग्रहण का प्रतिकूल प्रभाव की परिगणना करते हैं। अतएव इसे हम स्थानीय प्रभाव के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। ग्रहण प्रभाव का निरूपण करते हुए आठवें अध्याय में वृहद्दैवज्ञरंजन में बताया है कि यदि श्रावण, कार्तिक या आश्विन मास में सूर्य-चन्द्र ग्रहण हो और गुरूदृष्ट हो तो उत्तर दिशा के राज्यों में सुख तथा सुन्दर वृष्टि एवं स्थान की वृद्धि होती है। जिस राज्य के नक्षत्र पर ग्रहण होता है उस राज्य, मित्र एवं राजा का मरण होता है। कुछ स्थानों पर जाति के आधार पर ग्रहण का प्रभाव बताया गया ह। साथ ही अद्भुतसागर के राद्धोद्भूतावर्त नामक अध्याय के अन्तर्गत वैशाखमास से प्रारम्भ कर चैत्र पर्यन्त द्वादश मासों में

ग्रहण के प्रभाव को भिन्न- भिन्न देशों, स्थानों के आधार पर वर्णित किया गया है जिसका सर्वाधिक प्रभाव वृहत्संहिता में भी प्राप्त होता है। आचार्य ने उसी ग्रन्थ में कहा है कि –

कूर्मविभागेन वदेत् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।।

अर्थात् हमें ग्रहण के प्रभाव को कूर्मचक्र के आधार पर नक्षत्र विभाजन करके मूल्यांकन करना चाहिए। आजीविकाओं पर पड़ने वाले ग्रहण के प्रभावों का विवेचन भी आचार्य पराशर ने विस्तार से किया है जिसकी चर्चा भट्टोत्पल की टीका में तथा अद्भुतसागर में भी प्राप्त होता है। आचार्य कश्यप ने चतुर्दिक का भिन्न-भिन्न प्रभाव भी प्रतिपादित किया है कि उत्तर दिशा में ग्रहण हो तो विप्रों का पूर्व में क्षत्रियों का, दक्षिण में वैश्यों का तथा पश्चिम दिशा में ग्रहण हो तो शूद्रों को मारता है।

ग्रहण के विभिन्न स्वरूपों को आपको पूर्व में ही परिचित कराया जा चुका है अब आपके ज्ञानार्थ यहाँ छायाचित्र भी दर्शाया जा रहा है, जिससे आप भली-भॉति ग्रहण को समझ सके, और जान सके। चूँकि ग्रहण आकाशीय घटना है, अत: इसे आकाश में ही देखा जाना सम्भव है। अब आप पहले यहाँ ग्रहण को छायाचित्र में समझने का प्रयास कीजिये, पुनश्च उसके फलाफल का भी ज्ञान कीजिएगा।

ग्रहण का छायाचित्र -

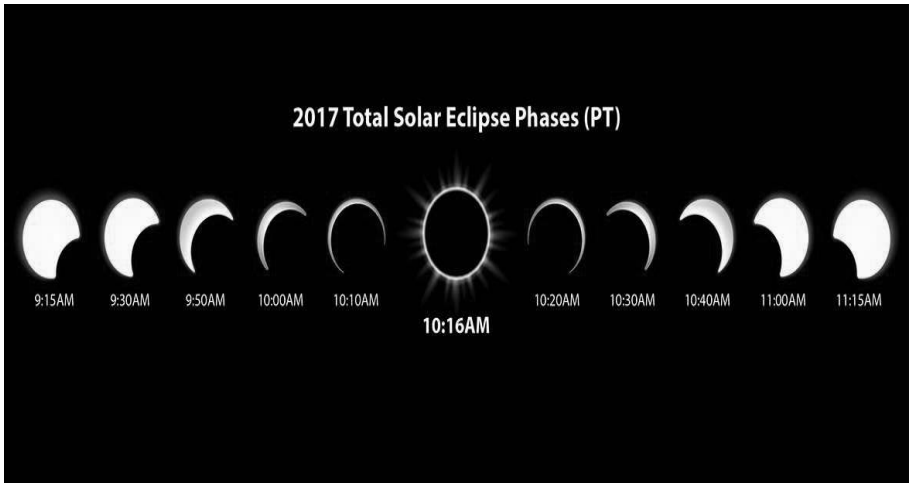

ग्रहण के विभिन्न स्थितियों को आप छायाचित्र में देखकर भी समझ सकते है। खग्रास, खण्डग्रास एवं सर्वग्रास तीनों अवस्थाओं को आप देख रहे है। उदाहरण के लिए २०१७ में लगने वाले सूर्यग्रहण को आपके ज्ञानार्थ यहाँ दिखाया गया है।

चन्द्रग्रहण के भी विभिन्न प्रकारों को आप छायाचित्र में देख सकते हैं। कैसे चन्द्रबिम्ब श्रृंगोन्नति रूप से पूर्ण बिम्ब के रूप में परिणत हो रहा है? उदाहरण के लिए आप छायाचित्र में देखकर समझ सकते है। ज्योतिष विज्ञान के अनुसार इस अद्भुत खगोलीय घटना के विश्लेषण को आधुनिक वैज्ञानिक भी सहज रूप से मानते हैं।

1.3.2 ग्रहण फल एवं शान्ति -

ग्रहण फल –

प्राय: देखा जाता है कि मुहूर्त्त प्रसंग में ग्रहण सर्वदा अशुभफलदायक ही होता है। इसीलिए ग्रहणकाल में सभी शुभकर्म वर्जित होते हैं। न केवल ग्रहण काल अपितु पूर्णग्रहण होने पर सात दिन अर्धग्रहण होने पर तीन दिन तथा पादग्रहण होने की स्थिति में एक दिन पूर्व तथा पर में शुभ कार्यों हेतु वर्जित है। इस सम्बन्ध में मतान्तर भी प्राप्त होते हैं, परन्तु सर्वाधिक आचार्यों ने उसे ही ग्रहण किया है। रामाचार्य ने लिखा है कि – ग्रहण लगे हुए ही सूर्य या चन्द्रमा के अस्त होने पर ग्रहण से तीन दिन पूर्व, ग्रस्तोदय होने की स्थिति में ग्रहण के अनन्तर तीन दिन तथा उदय एवं अस्त काल के अतिरिक्त खण्डग्रास ग्रहण में ग्रहण के पूर्व एवं बाद में तीन-तीन दिन दूषित होने से शुभकार्यों में त्याज्य होते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्णग्रहण होने पर छ: मास, अर्द्धग्रास होने पर तीन मास तथा चतुर्थांश ग्रहण होने पर एक मास तक ग्रहण नक्षत्र शुभकार्यों में वर्जित होता है। जैसा कि आचार्य ने कहा है –

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेन्दुभासान्।

पूर्वं परस्तादुभयोस्निघस्नग्रस्तेऽस्तगे वाय्युदितेऽर्धखण्डे।।

आचार्य कमलाकर भट्ट ने सिद्धान्ततत्वविवेक में लिखा है कि किसी भी ग्रहण में ग्रहण दिन सहित पूर्व का एक तथा बाद का तीन दिन समस्त शुभकार्यों में त्याज्य है। यथा –

प्रागेकाहस्त्रयहं पश्चाद् तद्दिनं ग्रहणस्यच।
त्यजेद्गत्यन्तराभावे सर्वग्रासेऽपि कर्मणाम्।।

समवेत फल निर्धारण के क्रम में भी मुहूर्त्त की तरह ही अशुभ फल ग्रहण से सम्बन्धित क्षेत्र पर पड़ता है। इस प्रकार के फल निर्धारण की मुख्यत: दो विधियाँ शास्त्र में दिखाई पड़ती है। १. कूर्मचक्रद्वार २. राज्यनक्षत्र द्वारा। कूर्मचक्र के द्वारा हम भारत को मध्य में रखकर समग्रविश्व तथा तदनन्तर भारत को भी नव भागों में विभक्त कर ग्रहणादि सम्बन्धित शुभाशुभ फलों को दैवज्ञों द्वारा प्रतिपादित विधि से जानने का प्रयास करते हैं।

यथा - नरक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यै र्व्यवस्थितैर्नवधा।
भारतवर्षे मध्यप्रगादिविभाजितदेशा:।।

कूर्म चक्र निर्धारण की विस्तृत विधि संहिता ग्रन्थों में वर्णित है। द्वितीय प्रकार से फलज्ञान क्रम में जिस राज्य के राज्याभिषेक नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण होता है वहाँ राज्यनाश, सुजन नाश तथा सामूहिक मरण आदि का भय व्याप्त रहता है।

ग्रहण फल -

आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के प्रमुखोद्देश्य को चिरतार्थ करते हुए न केवल शुभाशुभ फलों का निर्देश किया है अपितु अशुभता निवारणार्थ शान्ति की व्यवस्था भी दी है जिसके आचरण से समस्त अशुभफल नष्ट हो जाते है। वशिष्ठ ने ''ये नरा: शान्तिवर्जिता:'' कहकर कहा कि शान्तिवर्जित लोगों को ही अशुभफल की प्राप्ति होती है। यथा –

यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत्पीडा ये नरा: शान्तिवर्जिता:।।

शान्तिक्रम में भी औषधि स्नान, दान एवं जप –होमादि अनेक प्रकार की शान्ति शास्त्रों में वर्णित है। जिसके आचरण से ग्रहणजन्य दुष्ट फल होते हैं। कालतत्वविवेक के अनुसार स्वर्णनिर्मित नाग कांस्य पात्र में तिल, दक्षिणा एवं वस्त्रादि के साथ ब्राह्मण को दान करने से ग्रहणजन्य दुष्टफल नष्ट होते हैं-

''सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्। सौवर्णं रजतं वाऽपि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तित:। उपराग भवक्लेच्छिदे विप्राय कल्पयेत्।।''

दानमन्त्र -

तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव। विधुंतद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात्। स्कन्ध पुराण के अनुसार – गोदानं स्वर्णदानं च भूमिदानं विशेषत:। ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत्।।

औषधि स्नान –

दूर्वांकुरोशीरसमाशिलाजित्सिद्धार्थसर्वौषधिदारूलध्रै:।
स्नानं विदध्याग्रहणे रविन्द्वो: पीडाहरं राशिगते शुभे चेत्।।
वस्त्रपट्टेलिखेन्मन्त्रं रवेराहोस्तमो विधो:।
वेदोक्तं च ततो वस्त्रमाछाद्य स्नानमाचरेत्।।

अर्थात् ग्रणजन्य अशुभ फल की निवृत्ति हेतु दूर्वांकुर, शिलाजित, हल्दी, सर्वौषधि, पीली सरसो, देवदारू एवं लोध आदि जल में डालकर राहु, सूर्य एवं चन्द्रमा का मन्त्र लिखे हुए वस्त्र से आच्छादित होकर उपर्युक्त औषधि युक्त जल से स्नान करना चाहिए। प्रकारान्तर से अन्य औषधियाँ भी स्नान हेतु वर्णित है।

पूजनादि विधि से ग्रहण शान्ति –

ब्राह्मणों द्वारा विधिवत् गणेशादि देवतओं का पूजन कर चार कलश स्थापित करें, कलशों में सप्तमृत, पंचरत्न, पंचगव्य, मोती, शंख, रोचन, पद्म, श्वेत चन्दन, तीर्थोदक, आदि का निक्षेप कर व्याहृति मन्त्र द्वारा तिलमिश्रित हवनीय द्रव्यों से १००८ बार हवन कर संकल्पपूर्वक नव मन्त्रों द्वारा कलशों को अभिमन्त्रित करके निम्नलिखित मन्त्र द्वारा स्नान करने से ग्रहणजन्य दुष्टफल नष्ट हो जाते हैं।

योसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रयत्नत:। सहस्रनयन: शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु।।

स्मृति निर्णय के अनुसार सूर्यग्रहण में सूर्य का जप, दान तथा चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा एवं राहु का जप-दान अशुभ फल के निवृत्यर्थ करना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्तोत्र पाठ तथा अन्य विधियाँ भी प्रस्तुत सन्दर्भ में वर्णित हैं।

ग्रहण में कृत्य –

ग्रहण काल वैज्ञानिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि विभिन्न ग्रहों के किरणों के परस्पर संयोग से जिस विशिष्ट किरणों का निर्माण होता है वे कुछ कार्यों के लिए निषिद्ध तथा कुछ कार्यों हेतु उत्तम वातावरण का निर्माण करती हैं। पुराणों में ग्रहण काल को अतीव उपयोगी बताते हुए इसमें किए गए स्नान-दान-जप होमादि का सामान्य की अपेक्षा कई गुणा फल बताया गया

है। प्रमाणानुसार अष्टम ग्रह के रूप में प्रतिष्ठित राहु का ग्रहण काल में किए जाने वाले दान या होमाहुति से भरण – पोषण भी होता है। यथा –

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्त:।
आव्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता।।

जिस क्षेत्र में ग्रहण होता है उस क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों को स्नानादि कृत्य करना चाहिए। जैसा कि वृद्ध वशिष्ठ ने कहा है –

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्।।

ग्रहणकालिक दानादि का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए दान खण्ड में लिखा गया है कि – सर्वं भूमि समं दानं सर्वे ब्रह्म समाद्विजा:। सर्वं गंगासमं तोयं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो:।। ग्रहणारम्भ में स्नान कर ग्रहण मध्य में जप-होमादि तथा ग्रहणान्त में मोक्ष स्नान करके दान आदि देना चाहिए। ग्रहण के मोक्ष काल में जो व्यक्ति स्नान नहीं करता है वह अगले ग्रहण तक सूतकी होता है। यथा – भार्गवार्चनदीपिकामुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके। स सूतकी भोक्तावद्यावत् स्यादपरो ग्रह:।। ग्रहणकालिक यह स्नान अमन्त्रक ही होता है। जाबालि ने इस प्रसंग में कहा है कि चक्षु, शिर, कर्ण, एवं कफ रोग से ग्रसित व्यक्ति को कण्ठ से ही स्नान करना चाहिए। यहाँ ग्रहणजन्य पुण्यकाल केवल ग्रहणारम्भ से ग्रहणान्त तक ही होता है। रविवार में सूर्यग्रहण तथा सोमवार में चन्द्रग्रहण हो तो अन्य ग्रहणों की अपेक्षा इसमें स्नान-दान से अधिक पुण्य प्राप्त होता है तथा इसे चूड़ामणि योग कहते हैं।

ग्रहणकाल में वर्ज्य -

ग्रहण काल में मुख्यतया २४ कार्यों को वर्जित किया गया है। तद्यथा –

छेद्यं न पत्रं तृणदारूपुष्पं कार्यं न केशांबरपीडनं च।
दन्ता न शोध्या: पुरूषं न वाच्यं भोज्यं च वर्ज्यं मदनो न सेव्य:।।
बाह्यं न वाजी द्विरदादि किंचिद्दोह्यं न गावो महिषीसमाजम्।
यात्रां न कुर्याच्छयनं च तद्वत् ग्रहे निशाभर्तुरर्हपतेश्च।।
निद्रायां जायते अन्ध: विण्मूत्रे ग्रामसूकर:।
मैथुने च भवेत्कुष्ठी वधूर्वध्या द्विभोजने।।

न केवल गहणकाल अपितु ग्रहण पूर्व सूतक काल में भी उक्त कार्य वर्जित है। चन्द्रग्रहण में तीन प्रहर अर्थात् ९ घंटा तथा सूर्यग्रहण में चार प्रहर अर्थात् १२ घंटा पूर्व से सूतक काल होता है। यथा-

सूर्य ग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना।।

सूतक काल में बाल, वृद्ध एवं आतुर जनों हेतु छूट प्राप्त है। परन्तु ग्रहणकाल में इन्हें भी यथा सम्भव इसका त्याग कर देना चाहिए। सारांशत: ग्रहण से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध है जिनका निर्णय यथा प्रसंग सम्बन्धित शास्त्रों से करके ही कार्य-व्यवाहारादि करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. आकाश के तृतीय खांश का फल .....होता है।
2. आचार्य कश्यप के अनुसार उत्तर दिशा में ग्रहण हो तो ..... होती है।
3. मुहूर्त्त प्रसंग में ग्रहण सर्वदा .....होता है।
4. ग्रहण काल में मुख्यतया ..... कार्य वर्जित किया गया है।
5. सर्वं भूमि समं दानं सर्वे ब्रह्म ..... ।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिष शास्त्र को उसके अध्येताओं के साथ-साथ आम जनमानस के लिए भी श्रद्धा के शिखर पर स्थापित करने में सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत वर्णित **'ग्रहण'** का प्रमुख स्थान है। आश्चर्योत्पादित प्रतिभा के द्वारा हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विधा के अन्तर्गत इस खगोलीय घटना की परिगणना की वस्तुत: वह आज भी प्रासंगिक है, इसमें संशय नहीं। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (५/४०/५/९) में ग्रहण के विषय बताये गये है।'ग्रहण' एक खगोलीय घटना है जिसका प्रभाव ज्योतिष शास्त्र में वृहद् रूप में अंकित किया गया है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है क्योंकि अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा का परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है तथा उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में स्थित भूपिण्डस्थ जनों के समक्ष सूर्य किरणों के संसर्ग से प्रकाशित चन्द्रपिण्ड का उज्ज्वल भाग पूर्ण बिम्ब रूप में दिखाई पड़ता है परन्तु उक्त स्थिति में जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में पात के आसन्न होता है तब पृथ्वी द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध होने से जो भूमि की छाया बनती है वह भी स्वविरूद्ध दिशा में १८० अंश पर द्वितीय पात के आसन्न सूर्य एवं चन्द्र कक्षाओं से होकर ही आगे तक जाती है। अत: अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा उस भूभा में प्रविष्ट होकर ग्रहण ग्रस्त हो जाता है। इसलिएइसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने लिखा है कि सपात सूर्य का भुजांश जब १४° से न्यून होता है, तब चन्द्रग्रहण की

सम्भावना होती है। ग्रहण, ब्रह्माण्डस्थ ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के परस्पर संयोग से होने वाली एक ऐसी अद्भुत एवं विस्मयकारी आकाशीय घटना है जिसके द्वारा वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों जगत् प्रभावित होते हैं। एक ओर वैज्ञानिक वर्ग जहाँ इसके द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति को जानने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत् से सम्बद्ध लोग इस काल के अतीव पुण्यदायक होने से चतुर्विधपुरूषार्थों के प्रत्येक अवयवों की पुष्टि हेतु वेद-विहित कर्मानुष्ठान-स्थान-दान एवं होम आदि करते हुए परा एवं अपरा विद्या के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाते हैं।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहण – गृह्णाति इति ग्रहणम्। ग्रहण एक आकाशीय घटना है, जो दो बिम्बों के कारण निश्चित कालावधि में घटित होता है। मुख्यतया दो ग्रहण होते है – चन्द्रग्रण एवं सूर्यग्रहण।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

शर – शर का अर्थ होता है दूरी। ग्रह से बिम्ब की दूरी। गणित ज्योतिष में इसका व्यापक महत्व होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते है। इसी तिथि को शराभाव में सूर्यग्रहण संभव होता है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा संज्ञक कहा गया है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही शराभाव में होता है।

उपराग – उपराग ग्रहण का पर्याय है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. क्षत्रियों की हानि 2. विप्रों की हानि 3. अशुभफलदायक 4. २४ 5. समाद्विजा:

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तत्वविवेक – मूल लेखक- कमलाकर भट्ट, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी, पर्वसम्भवाधिकार

(ख) ऋग्वेद – ५/४०/५/९

(ग) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी,

मध्यमाधिकार -३

(घ) वृहद्दैवज्ञरंजन – प्र. ३३ श्लोक ३

(ड.) निर्णयसिन्धु - प्र. परि.- ग्रहण निर्णय।

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वृहद्दैवज्ञरंजन – लोकमणि दहाल

निर्णयसिन्धु – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त

मुहूर्त्तचिन्तामणि – डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त - डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र

ज्योतिर्निबन्धसर्वस्व – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहण को परिभाषित करते हुए विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ग्रहण स्वरूप का उल्लेख कीजिये।
3. प्रमुख ग्रहण का वर्णन कीजिये।
4. ग्रहण में कृत्याकृत्य पर प्रकाश डालिये।
5. ग्रहण शान्ति का वर्णन कीजिये।

इकाई - 2 सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ग्रहण विचार
2.3.1 सूर्य ग्रहण विचार
2.3.2 चन्द्रग्रहण विचार
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 के द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है –सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार। इससे पूर्व आपने ग्रहण के बारे में जान लिया है। अब आप ग्रहण से जुड़े मुख्य दो ग्रहण सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। अर्थात् सूर्य का ग्रहण सूर्यग्रहण होता है। उसी प्रकार चन्द्रमा का ग्रहण चन्द्रग्रहण कहलाता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन ये दोनों ग्रहण महत्वपूर्ण रूप में जाने जाते है।

आइए इस इकाई में हम लोग ग्रहण ज्ञान के पश्चात् 'सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- सूर्यग्रहण को परिभाषित कर सकेंगे।
- चन्द्रग्रहण के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण' लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण में विशेष को समझ लेंगे।

2.3 सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार

सामान्यतया किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है। जब कोई खगोलीय पिण्ड किसी अन्य पिण्ड के पीछे आ जाता है या किसी खगोलीय पिण्ड का प्रकाश अन्य पिण्ड के द्वारा बाधित होता है, तब ग्रहण होता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन मुख्यतया ग्रहण के दो भेद है – सूर्यग्रहण एवं दूसरा चन्द्रग्रहण। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। पृथ्वी स्वयं पर प्रकाश एवं ईषत् दीर्घ गोलाकार है, इससे इसका जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है, उसके विपरीत भाग में सूच्याकार (सूची सी आकृति) इस भूच्छाया में जब चन्द्रमा प्रवेश करता है, तब वह क्रमश: अन्धकार से आच्छादित होने लगता है। इसी को 'चन्द्रग्रहण' कहते है। ऐसी घटना केवल पूर्णिमा को ही होती है इस कारण पूर्णिमा को ही 'चन्द्रग्रहण' हो सकता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य और पृथ्वी के मध्यवर्ती हो तो सूर्यरश्मि चन्द्र से अवरूद्ध होती है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। सूर्य और चन्द्रमा के संगमकाल में अर्थात् अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना होती है। यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एवं प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण होता। क्योंकि उस काल में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सूत्र में रहने से चन्द्र द्वारा सूर्यरश्मि बाधित वा भूच्छाया द्वारा चन्द्रबिम्ब छादित होता। किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथ्वी कक्षा समतलस्थ नहीं है। इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग्भाव से सन्धि होती है। जिन राहु, केतु को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान में या तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है, तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी समतलस्थ होती है। अतएव प्रत्येक पूर्णमासी वा अमावस्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ वा निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नहीं होता।

चन्द्रग्रहण के नियम –

क. चन्द्रकक्षास्थ पृथ्वी की छाया के केन्द्र से चन्द्रबिम्ब के केन्द्र तक जो अन्तर हैं, वह भूच्छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध के योग से न्यून न होने से ग्रहण नहीं हो सकता है।

ख. चन्द्रमा बिम्ब केन्द्र से छायाकेन्द्र पर्यन्त जो अन्तर है, वह छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध वियोग फल की अपेक्षा न्यून तथा दोनों समान न होने पर पूर्ण ग्रहण नहीं हो सकता है।

ग. पृथ्वी से चन्द्रमा जितनी दूर, भूच्छाया उसके प्राय: साढ़े तीन गुणा अधिक दूर विस्तृत एवं इस छाया के जिस प्रदेश में चन्द्रमा प्रवेश करता है, वह क्षेत्र चन्द्रव्यास से प्राय: तीन गुणा अधिक होता है। चन्द्रबिम्ब जब सम्यग् रूप से छाया में प्रविष्ट होता है, उस समय 'पूर्णचन्द्रग्रहण' होता है और जिस समय उसका एक अंशमात्र छाया में आच्छन्न होता है उस समय 'आंशिकचन्द्रग्रहण' होता है।

घ. सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून न हो तब तक चन्द्रग्रहण सम्भव नहीं होता।

ङ. एक स्थान पर एक वर्ष में दो बार भी चन्द्रग्रहण हो सकता है और एक बार भी नहीं हो सकता यह भी सम्भव है। परिस्थिति के अनुसार एक वर्ष में पाँच बार सूर्यग्रहण और दो चन्द्रग्रहण का होना सम्भव है।

च. चन्द्रमा अमावस्या को १७ अंश,२१ कला पातस्थान में निकटवर्ती होने पर सूर्यग्रहण, पूर्णिमा को १९ अंश ३४ कला निकट होने पर चन्द्रग्रहण हो सकता है।

छ. चन्द्रपात यदि स्थिर रहता तो प्रतिवत्सर एक ही समय में ग्रहण होता किन्तु यह पात पूर्व से पश्चिम की ओर प्राय: १८ वर्ष २२८ दिन और ६ होरा में एक बार विलोमगति से परिक्रमा

करता है। इसी कारण इतने समय के अन्त में चन्द्रपात अपने स्थान में प्रत्यागत होता है। प्राय: प्रति १८ वर्ष २२८ दिन छ: होरा में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण प्राय: समानरूप से होते हैं।

सूर्यग्रहण के नियम –

क. सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून न हो तब तक सूर्यग्रहण सम्भव नहीं होता।

ख. दर्शान्त में अर्थात् अमावस्यान्त में सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही कक्षा में होने के कारण प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना नहीं हो पाती। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि –

दर्शान्तकालेऽपि समौ रविन्दु द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्वर्धोचिछ्रत: पश्यति नैकसूत्रं तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि।।

ग. सूर्य और चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध योगफल यदि सूर्य के केन्द्र से चन्द्रमा के केन्द्र की अपेक्षा न्यून होता है तो ग्रहण सम्भव होगा।

घ. सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध से चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो 'मध्यग्रास' होगा।

ङ. सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध को चन्द्रमा के दृश्यमान व्यासार्द्ध से अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो 'सर्वग्रास' ग्रहण होगा।

च. मानैक्यार्धाल्पशर समय में सूर्यग्रहण कहीं न कहीं प्रतिदिन होता है, परन्तु स्थान विशेष से वह ग्रहण कहीं दीखता है कहीं नहीं भी दीखता है।

चन्द्रमा द्वारा सूर्य की किरणें अवरूद्ध होने से सूर्यग्रहण होता है। चन्द्रमा वस्तुत: सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटा है, परन्तु दूरता में वह सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी के निकटस्थ होने से उसका भी बिम्ब के समान दिख पड़ना स्वाभाविक है। सौरग्रहण तीन प्रकार के होते है:- आंशिक, मध्य, सर्वग्रास, खग्रास एवं वलय ग्रहण।

खगोल शास्त्रियों ने गणित से निश्चित किया है कि 18 वर्ष 18 दिन की समयावधि में 41 सूर्य ग्रहण और 29 चन्द्रग्रहण होते हैं। एक वर्ष में 5 सूर्यग्रहण तथा 2 चन्द्रग्रहण तक हो सकते हैं। किन्तु एक वर्ष में 2 सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिए। हाँ, यदि किसी वर्ष 2 ही ग्रहण हुए तो वो दोनों ही सूर्यग्रहण होंगे। यद्यपि वर्ष भर में 7 ग्रहण तक संभाव्य हैं, तथापि 4 से अधिक ग्रहण बहुत कम ही देखने को मिलते हैं। प्रत्येक ग्रहण 18 वर्ष 11 दिन बीत जाने पर पुन: होता है। किन्तु वह अपने पहले

के स्थान में ही हो यह निश्चित नहीं हैं, क्योंकि सम्पात बिन्दु निरन्तर चल रहे हैं।

साधारणत: सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, परन्तु सच्चाई यह है कि चन्द्र ग्रहण से कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं। 3 चन्द्रग्रहण पर 4 सूर्यग्रहण का अनुपात आता है। चन्द्र ग्रहणों के अधिक देखे जाने का कारण यह होता है कि वे पृथ्वी के आधे से अधिक भाग में दिखलाई पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वी के बहुत बड़े भाग में प्राय: सौ मील से कम चौड़े और दो से तीन हज़ार मील लम्बे भूभाग में दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि मध्यप्रदेश में **खग्रास**, जो सम्पूर्ण सूर्य बिम्ब को ढकने वाला होता है ग्रहण हो तो गुजरात में **खण्ड सूर्य ग्रहण**, जो सूर्य बिम्ब के अंश को ही ढकता है, ही दिखलाई देगा और उत्तर भारत में वह दिखायी ही नहीं देगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

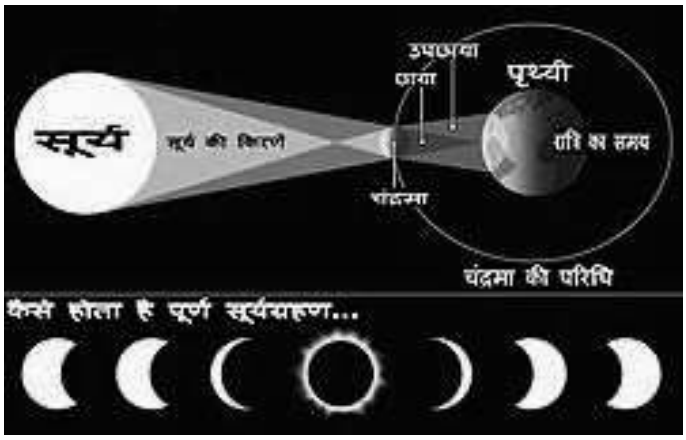

सूर्यग्रहण (Solar Eclipse)

चाहे ग्रहण का कोई आध्यात्मिक महत्त्व हो अथवा न हो किन्तु दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए यह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता। बड़े-बड़े शोधकर्ता एवं खगोलविद इसकी प्रतीक्षा में पलक बिछाए रहते हैं क्योंकि ग्रहण ही वह समय होता है जब ब्रह्मांड में अनेकों विलक्षण एवं अद्भुत घटनाएं घटित होती हैं जिससे कि वैज्ञानिकों को नये-नये तथ्यों पर कार्य करने का अवसर मिलता है। 1968 में **लार्कयर** नामक वैज्ञानिक ने सूर्यग्रहण के अवसर पर की गई खोज के सहारे वर्ण मंडल में हीलियम गैस की उपस्थिति का पता लगाया था। आइंस्टाइन का यह प्रतिपादन भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर ही सही सिद्ध हो सका, जिसमें उन्होंने अन्य पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण से प्रकाश के पड़ने की बात कही थी। चन्द्रग्रहण तो अपने संपूर्ण तत्कालीन प्रकाश क्षेत्र में देखा जा सकता है किन्तु सूर्यग्रहण अधिकतम 10 हज़ार किलोमीटर लम्बे और 250 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में ही देखा जा

सकता है। सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि अधिक से अधिक 11 मिनट ही हो सकती है उससे अधिक नहीं। संसार के समस्त पदार्थों की संरचना सूर्य रश्मियों के माध्यम से ही संभव है। यदि सही प्रकार से सूर्य और उसकी रश्मियों के प्रभावों को समझ लिया जाए तो समस्त धरा पर आश्चर्यजनक परिणाम लाए जा सकते हैं। सूर्य की प्रत्येक रश्मि विशेष अणु का प्रतिनिधित्व करती है और जैसा कि स्पष्ट है, प्रत्येक पदार्थ किसी विशेष परमाणु से ही निर्मित होता है। अब यदि सूर्य की रश्मियों को पूंजीभूत कर एक ही विशेष बिन्दु पर केन्द्रित कर लिया जाए तो पदार्थ परिवर्तन की क्रिया भी संभव हो सकती है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

आचार्य भास्कराचार्य जी ने ग्रहण के आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में इस प्रकार किया है –

बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदो प्रवदन्ति हि।
सदुपयोगिजने सचमत्कृतिर्ग्रहणमिन्द्विनयो: कथयाम्यत:।।

इस श्लोक में आचार्यवर सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के काल में किए गए जपदान एवं ईश्वरीय भक्ति की बात करते हुए कहते हैं कि ग्रहणकाल में जो मनुष्य उक्तानुसार (जप, तप, दान, ईश्वरीय भक्ति आदि) करता है, उसे बहुफल अर्थात् उस मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति होती है।

यह तो स्पष्ट है कि सूर्य में अद्भुत शक्तियाँ निहित हैं और ग्रहण काल में सूर्य अपनी पूर्ण क्षमता से इन शक्तियों को, इन रश्मियों को विकीर्ण करता है, जिसे ध्यान-मनन के प्रयोगों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु उतना ही जितना हमारे शरीर में क्षमता है। **ग्रहण** का शाब्दिक अर्थ ही लेना, अंगीकार या स्वीकार करना है। हमारे ऋषि मुनियों ने इतना ज्ञान हमारे सम्मुख रखा है जिसका अनुमान लगाना, अर्थात ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करना ही जीवन की सार्थकता है। अपने भीतर के अन्धकार को मिटाने के लिए दैविक आराधना, पूजा अर्चना इत्यादि विशेष पर्वों पर करते रहने का विधान है। जैसा कि ग्रहण काल में उत्तम यौगिक क्रिया, पूजा अनुष्ठान, मन्त्र सिद्धि, तीर्थ स्नान, जप दान आदि का अपना एक विशेष महत्त्व है। इसके प्रमाण शास्त्रों में विद्यमान हैं। बहुत से बुद्धिजीवी लोग कहते हैं कि ग्रहण काल में ध्यान मनन, जाप, उपवास इत्यादि निरा अन्धविश्वास है, इन सब का कोई औचित्य नहीं।

भारतीय वैदिक काल और सूर्य ग्रहण

वैदिक काल से पूर्व भी खगोलीय संरचना पर आधारित कलैन्डर बनाने की आवश्कता अनुभव की गई। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण तथा उनकी पुनरावृत्ति की पूर्व सूचना ईसा से चार हज़ार वर्ष

पूर्व ही उपलब्ध थी। **ऋग्वेद** के अनुसार **अत्रिमुनि** के परिवार के पास यह ज्ञान उपलब्ध था। वेदांग ज्योतिष का महत्त्व हमारे वैदिक पूर्वजों के इस महान् ज्ञान को प्रतिबिम्बित करता है। ग्रह नक्षत्रों की दुनिया की यह घटना भारतीय मनीषियों को अत्यन्त प्राचीन काल से ज्ञात रही है। प्राचीनकाल में ही महर्षियों ने गणना कर दी थी। इस पर धार्मिक, वैदिक, वैचारिक, वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक एवं ज्योतिषीय ग्रन्थों में होता चला आया है। महर्षि अत्रि मुनि ग्रहण के ज्ञान को देने वाले प्रथम आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाश काल अर्थात वैदिक काल से ग्रहण पर अध्ययन, मनन और परीक्षण होते चले आये हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह चमत्कारी वर्णन मिलता है कि "हे सूर्य ! असुर राहु ने आप पर आक्रमण कर अन्धकार से जो आपको विद्ध कर दिया, उससे मनुष्य आपके रूप को पूर्ण रूप से देख नहीं पाये और अपने अपने कार्यक्षेत्रों में हतप्रभ से हो गये। तब महर्षि अत्रि ने अपने अर्जित ज्ञान की सामर्थ्य से छाया का दूरीकरण कर सूर्य का उद्धार किया।"

मन्त्र -

स्वर्भानुर्वा आसुर: सूर्यं तमसा विध्यत्तदत्रिरपनुनोद तदत्रिरन्वपश्यत्।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाऽविध्यत्तं देवा: स्वरसामानो भवन्त्यादित्यस्य स्पृत्यै:।।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा विध्यत्तं देवा न व्यजानंस्ते-
ऽत्रिमुपाधावंस्तस्यात्रिर्भासेन तमोऽपाहन्यत्।
प्राथममपाहन् सा कृष्णाविरभवद्यद्द्वितीयं सा रजता यत्तृतीयं।
सा लोहिती यया वर्णनमभ्यतृणत्सा शुक्लासीत्।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसा विध्यत् स न व्यरोचत्तसत्रिर्भासेन।
तमोऽपाहन्स व्यरोचयत यदेतदभा अभवत्तद्भासस्य भासत्वम्।।
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर:। अत्रयसस्तमन्वविन्दन्न्ह्यन्ये अशक्नुवन्।।

अगले मन्त्र में यह आता है कि "इन्द्र ने अत्रि की सहायता से ही राहु की सीमा से सूर्य की रक्षा की थी।" इसी प्रकार ग्रहण के निरसण में समर्थ महर्षि अत्रि के तप: संधान से समुद्भुत अलौकिक प्रभावों का वर्णन वेद के अनेक मन्त्रों में प्राप्त होता है। किन्तु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्य से इस आलौकिक कार्यों में दक्ष माने गये, इस विषय में दो मत हैं- **प्रथम** परम्परा प्राप्त यह मत है कि, वे इस कार्य में तपस्या के प्रभाव से समर्थ हुए और **दूसरा** यह कि, वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायता से ग्रहण से ग्रसित हुए सूर्य को दिखलाने में समर्थ हुए। अब आधुनिक युग है, लोगों की सोच भी आधुनिक होती जा रही है इसलिए तपस्या के प्रभाव जैसे किसी मत की अपेक्षा यहाँ हम

दूसरे मत को ही स्वीकार कर लेते हैं हैं। कुल मिलाकर इतना स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल में भारतीय सूर्यग्रहण के विषय में पूर्णत: जानते थे।

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है।
2. चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है
3. सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून न हो तब तक चन्द्रग्रहण सम्भव नहीं होता।
4. चन्द्रग्रहण में छादक भूभा होता है।
5. जो छादन करने के योग्य हो, उसे छादक बिम्ब कहते है।
6. लम्बन का संस्कार चन्द्रग्रहण में होता है।
7. दर्शान्त काल में सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही कक्षा में होते है।

धार्मिक विवेचन

ऋषि-मुनियों ने सूर्य ग्रहण लगने के समय भोजन के लिए मना किया है, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि ग्रहण के समय में कीटाणु बहुलता से फैल जाते हैं। खाद्य वस्तु, जल आदि में सूक्ष्म जीवाणु एकत्रित होकर उसे दूषित कर देते हैं। इसलिए ऋषियों ने पात्रों में कुश डालने को कहा है, ताकि सब कीटाणु कुश में एकत्रित हो जायें और उन्हें ग्रहण के बाद फेंका जा सके। पात्रों में अग्नि डालकर उन्हें पवित्र बनाया जाता है ताकि कीटाणु मर जायें। ग्रहण के बाद स्नान करने का विधान भी इसीलिए बनाया गया ताकि स्नान से शरीर के अंदर ऊष्मा का प्रवाह बढ़े, भीतर-बाहर के कीटाणु नष्ट हो जायें और धुल कर बह जायें।

ग्रहण के दौरान भोजन न करने के विषय में 'जीव विज्ञान' विषय के **प्रोफेसर टारिंस्टन** ने पर्याप्त अनुसंधान करके सिद्ध किया है कि सूर्य-चंद्र ग्रहण के समय मनुष्य के पेट की पाचन-शक्ति कमज़ोर हो जाती है, जिसके कारण इस समय किया गया भोजन अपच, अजीर्ण आदि शिकायतें पैदा कर शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचा सकता है। भारतीय धर्म विज्ञानवेत्ताओं का मानना है कि सूर्य-चंद्र ग्रहण लगने से दस घंटे पूर्व से ही इसका कुप्रभाव शुरू हो जाता है। अंतरिक्षीय प्रदूषण के समय को सूतक काल कहा गया है। इसलिए सूतक काल और ग्रहण के समय में भोजन तथा पेय पदार्थों के

सेवन की मनाही की गई है। चूंकि ग्रहण से हमारी जीवन शक्ति का हास होता है और तुलसी दल में विद्युत शक्ति व प्राण शक्ति सबसे अधिक होती है, इसलिए सौर मंडलीय ग्रहण काल में ग्रहण प्रदूषण को समाप्त करने के लिए भोजन तथा पेय सामग्री में तुलसी के कुछ पत्ते डाल दिए जाते हैं जिसके प्रभाव से न केवल भोज्य पदार्थ बल्कि अन्न, आटा आदि भी प्रदूषण से मुक्त बने रह सकते हैं।

पुराणों की मान्यता के अनुसार राहु चंद्रमा को तथा केतु सूर्य को ग्रसता है। ये दोनों ही छाया की संतान हैं। चंद्रमा और सूर्य की छाया के साथ-साथ चलते हैं। चंद्र ग्रहण के समय **कफ** की प्रधानता बढ़ती है और मन की शक्ति क्षीण होती है, जबकि सूर्य ग्रहण के समय जठराग्नि, नेत्र तथा पित्त की शक्ति कमज़ोर पड़ती है। गर्भवती स्त्री को सूर्य-चंद्र ग्रहण नहीं देखने चाहिए, क्योंकि उसके दुष्प्रभाव से शिशु अंगहीन होकर विकलांग बन सकता है, गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है। इसके लिए गर्भवती के उदर भाग में गोबर और तुलसी का लेप लगा दिया जाता है, जिससे कि राहु-केतु उसका स्पर्श न करें। ग्रहण के दौरान गर्भवती महिला को कुछ भी कैंची या चाकू से काटने को मना किया जाता है और किसी वस्त्रादि को सिलने से रोका जाता है। क्योंकि ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से शिशु के अंग या तो कट जाते हैं या फिर सिल जाते हैं। ग्रहण लगने के पूर्व नदी या घर में उपलब्ध जल से स्नान करके भगवान का पूजन, यज्ञ, जप करना चाहिए। भजन-कीर्तन करके ग्रहण के समय का सदुपयोग करें। ग्रहण के दौरान कोई कार्य न करें। ग्रहण के समय में मंत्रों का जाप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। ग्रहण की अवधि में तेल लगाना, भोजन करना, जल पीना, मल-मूत्र त्याग करना, केश विन्यास बनाना, रति-क्रीड़ा करना, मंजन करना वर्जित किए गए हैं। कुछ लोग ग्रहण के दौरान भी स्नान करते हैं। ग्रहण समाप्त हो जाने पर स्नान करके ब्राह्मण को दान देने का विधान है। कहीं-कहीं वस्त्र, बर्तन धोने का भी नियम है। पुराना पानी, अन्न नष्ट कर नया भोजन पकाया जाता है और ताजा पानी भरकर पीया जाता है।

सूर्यग्रहण में ग्रहण से चार प्रहर पूर्व और चंद्र ग्रहण में तीन प्रहर पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये। बूढे बालक और रोगी एक प्रहर पूर्व तक खा सकते हैं। ग्रहण पूरा होने पर सूर्य या चंद्र, जिसका ग्रहण हो, ग्रहण के दिन पत्ते, तिनके, लकड़ी और फूल नहीं तोड़ना चाहिए। बाल तथा वस्त्र नहीं निचोड़ने चाहिये व दंत धावन नहीं करना चाहिये। ग्रहण के समय ताला खोलना, सोना, मल मूत्र का त्याग करना, मैथुन करना और भोजन करना- ये सब कार्य वर्जित हैं। ग्रहण के समय मन से सत्पात्र को उद्देश्य करके जल में जल डाल देना चाहिए। ऐसा करने से देने वाले को उसका फल प्राप्त होता है और लेने वाले को उसका दोष भी नहीं लगता। ग्रहण के समय गायों को घास, पक्षियों को अन्न, ज़रुरतमंदों को वस्त्र दान से अनेक गुना पुण्य प्राप्त होता है। 'देवी भागवत' में आता है कि भूकंप एवं

ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी को खोदना नहीं चाहिये।

आधुनिक विज्ञान द्वारा विश्लेषण

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से जब सूर्य व पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा आ जाता है तो चन्द्रमा के पीछे सूर्य का बिम्ब कुछ समय के लिए ढ़क जाता है, उसी घटना को 'सूर्यग्रहण' कहा जाता है। पृथ्वी सूरज की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथ्वी की। कभी-कभी चन्द्रमा, सूर्य और धरती के बीच आ जाता है। फिर वह सूर्य की आंशिक या समस्त प्रकाश को रोक लेता है जिससे धरती पर छाया फैल जाता है। इस घटना को 'सूर्य ग्रहण' कहा जाता है। यह घटना प्रत्येक अमावस्या को ही होती है। अक्सर चन्द्रमा, सूर्य के सिर्फ़ कुछ हिस्से को ही ढ़कता है। यह स्थिति खण्ड-ग्रहण कहलाती है। कभी-कभी ही ऐसा होता है कि चन्द्रमा, सूर्य को पूरी तरह ढँक लेता है। इसे पूर्ण-ग्रहण कहते हैं। पूर्ण-ग्रहण धरती के बहुत कम क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। ज़्यादा से ज़्यादा दो सौ पचास (250) किलोमीटर के सम्पर्क में। इस क्षेत्र के बाहर केवल खंड-ग्रहण दिखाई देता है। पूर्ण-ग्रहण के समय चन्द्रमा को सूरज के सामने से गुजरने में दो घण्टे लगते हैं। चन्द्रमा सूरज को पूरी तरह से, ज़्यादा से ज़्यादा, सात मिनट तक ढँकता है। इन कुछ क्षणों के लिए आसमान में अंधेरा हो जाता है, या यूँ कहें कि दिन में रात हो जाती है।चन्द्रमा द्वारा सूर्य के बिम्ब के पूरे या कम भाग के ढ़के जाने की वजह से सूर्य ग्रहण तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें पूर्ण सूर्य ग्रहण, आंशिक सूर्य ग्रहण व वलयाकार सूर्य ग्रहण कहते हैं।

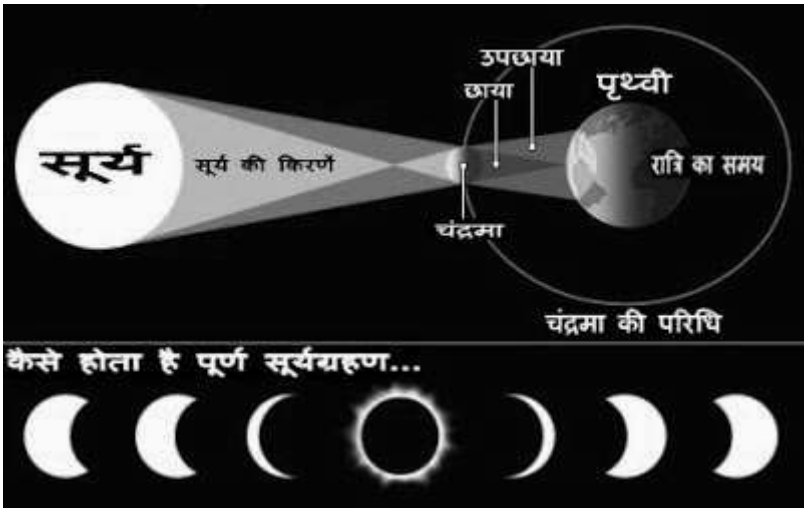

1. पूर्ण सूर्यग्रहण -

पूर्ण सूर्य ग्रहण उस समय होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी के काफ़ी पास रहते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है और चन्द्रमा पूरी तरह से पृथ्वी को अपने छाया क्षेत्र में ले लेता है। इसके फलस्वरूप सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक पहुँच नहीं पाता है और पृथ्वी पर अंधकार जैसी स्थिति

उत्पन्न हो जाती है तब पृथ्वी पर पूरा सूर्य दिखाई नहीं देता। इस प्रकार बनने वाला ग्रहण पूर्ण सूर्य ग्रहण कहलाता है।

2. आंशिक सूर्य ग्रहण -

आंशिक सूर्यग्रहण में जब चन्द्रमा सूर्य व पृथ्वी के बीच में इस प्रकार आए कि सूर्य का कुछ ही भाग पृथ्वी से दिखाई नहीं देता है अर्थात चन्दमा, सूर्य के केवल कुछ भाग को ही अपनी छाया में ले पाता है। इससे सूर्य का कुछ भाग ग्रहण ग्रास में तथा कुछ भाग ग्रहण से अप्रभावित रहता है तो पृथ्वी के उस भाग विशेष में लगा ग्रहण आंशिक सूर्य ग्रहण कहलाता है।

3. वलयाकार सूर्य ग्रहण -

वलयाकार सूर्य ग्रहण में जब चन्द्रमा पृथ्वी के काफ़ी दूर रहते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है अर्थात चन्द्र सूर्य को इस प्रकार से ढकता है, कि सूर्य का केवल मध्य भाग ही छाया क्षेत्र में आता है और पृथ्वी से देखने पर चन्द्रमा द्वारा सूर्य पूरी तरह ढका दिखाई नहीं देता बल्कि सूर्य के बाहर का क्षेत्र प्रकाशित होने के कारण कंगन या वलय के रूप में चमकता दिखाई देता है। कंगन आकार में बने सूर्यग्रहण को ही वलयाकार सूर्य ग्रहण कहलाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

चाहें ग्रहण का कोई आध्यात्मिक महत्त्व हो अथवा न हो किन्तु दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए यह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता। क्यों कि ग्रहण ही वह समय होता है जब ब्रह्माण्ड में अनेकों विलक्षण एवं अद्भुत घटनाएं घटित होतीं हैं जिससे कि वैज्ञानिकों को नये नये तथ्यों पर कार्य करने का अवसर मिलता है। 1968 में लार्कयर नामक वैज्ञानिक नें सूर्य ग्रहण के अवसर पर की गई खोज के सहारे वर्ण मंडल में हीलियम गैस की उपस्थिति का पता लगाया था। आईन्स्टीन का यह प्रतिपादन भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर ही सही सिद्ध हो सका, जिसमें उन्होंने अन्य पिण्डों के गुरुत्वकर्षण से प्रकाश के पडने की बात कही थी। चन्द्रग्रहण तो अपने सम्पूर्ण तत्कालीन प्रकाश क्षेत्र में देखा जा सकता है किन्तु सूर्यग्रहण अधिकतम 10 हजार किलोमीटर लम्बे और 250 किलोमीटर चौडे क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि अधिक से अधिक 11 मिनट ही हो सकती है उससे अधिक नहीं। संसार के समस्त पदार्थों की संरचना सूर्य रश्मियों के माध्यम से ही संभव है। यदि सही प्रकार से सूर्य और उसकी रश्मियों के प्रभावों को समझ लिया जाए तो समस्त धरा पर आश्चर्यजनक परिणाम लाए जा सकते हैं। सूर्य की प्रत्येक रश्मि विशेष अणु का प्रतिनिधित्व करती है और जैसा कि स्पष्ट है, प्रत्येक पदार्थ किसी विशेष परमाणु से ही निर्मित होता है। अब यदि सूर्य की रश्मियों को पूंजीभूत कर एक ही विशेष बिन्दु पर केन्द्रित कर लिया जाए तो पदार्थ परिवर्तन की क्रिया भी संभव हो सकती है।

चंद्रग्रहण (lunar eclipse)

चंद्रग्रहण उस खगोलीय स्थिति को कहते है जब चंद्रमा पृथ्वी के ठीक पीछे उसकी प्रच्छाया में आ जाता है। ऐसा तभी हो सकता है जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा इस क्रम में लगभग एक सीधी रेखा में अवस्थित हों। इस ज्यामितीय प्रतिबंध के कारण चंद्रग्रहण केवल पूर्णिमा को घटित हो सकता है। चंद्रग्रहण का प्रकार एवं अवधि चंद्र आसंधियों के सापेक्ष चंद्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। किसी सूर्यग्रहण के विपरीत, जो कि पृथ्वी के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग से ही दिख पाता है, चंद्रग्रहण को पृथ्वी के रात्रि पक्ष के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। जहाँ चंद्रमा की छाया की लघुता के कारण सूर्यग्रहण किसी भी स्थान से केवल कुछ मिनटों तक ही दिखता है, वहीं चंद्रग्रहण की अवधि कुछ घंटों की होती है। इसके अतिरिक्त चंद्रग्रहण को, सूर्यग्रहण के विपरीत, आँखों के लिए बिना किसी विशेष सुरक्षा के देखा जा सकता है, क्योंकि चंद्रग्रहण की उज्ज्वलता पूर्ण चंद्र से भी कम होती है।

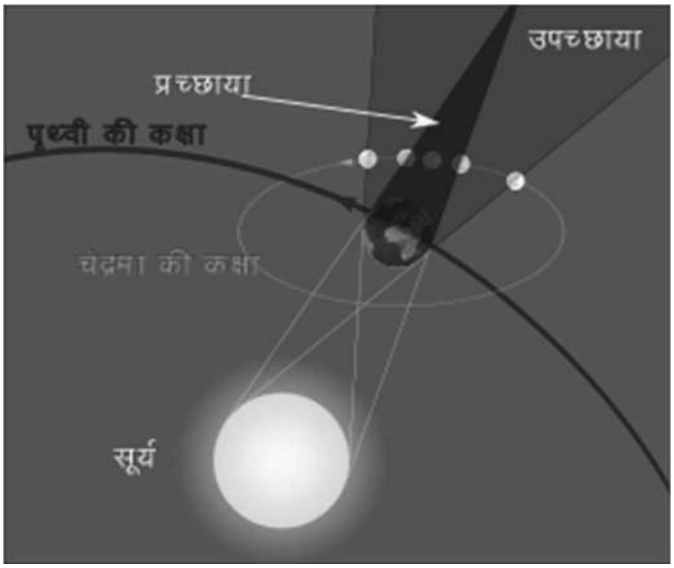

चन्द्र ग्रहण का प्रकार एवं अवधि चन्द्र आसंधियों के सापेक्ष चन्द्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। चन्द्र ग्रहण दो प्रकार का नज़र आता है -

1. पूरा चन्द्रमा ढक जाने पर 'सर्वग्रास चन्द्रग्रहण'
2. आंशिक रूप से ढक जाने पर 'खण्डग्रास (उपच्छाया) चन्द्रग्रहण'

पृथ्वी की छाया सूर्य से 6 राशि के अन्तर पर भ्रमण करती है तथा पूर्णमासी को चन्द्रमा की छाया सूर्य

से 6 राशि के अन्तर होते हुए जिस पूर्णमासी को सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों के अंश, कला एवं विकला पृथ्वी के समान होते हैं अर्थात एक सीध में होते हैं, उसी पूर्णमासी को चन्द्र ग्रहण लगता है। विश्व में किसी सूर्य ग्रहण के विपरीत, जो कि पृथ्वी के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग से ही दिख पाता है, चन्द्र ग्रहण को पृथ्वी के रात्रि पक्ष के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। जहाँ चन्द्रमा की छाया की लघुता के कारण सूर्य ग्रहण किसी भी स्थान से केवल कुछ मिनटों तक ही दिखता है, वहीं चन्द्र ग्रहण की अवधि कुछ घंटो की होती है। इसके अतिरिक्त चन्द्र ग्रहण को सूर्य ग्रहण के विपरीत किसी विशेष सुरक्षा उपकरण के बिना नंगी आँखों से भी देखा जा सकता है, क्योंकि चन्द्र ग्रहण की उज्ज्वलता पूर्ण चन्द्र से भी कम होती है।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. पुराणों की मान्यता के अनुसार सूर्य का ग्रास.....करता है।
2. पूर्ण चन्द्र ढ़क जाने के पश्चात् .....ग्रहण होता है।
3. पृथ्वी और सूर्य के बीच चन्द्रमा के आने से ..... ग्रहण होता है।
4. पृथ्वी की छाया सूर्य से …….. के अन्तर पर भ्रमण करती है।
5. जब चन्द्रमा सूर्य व पृथ्वी के बीच में इस प्रकार आए कि सूर्य का कुछ ही भाग पृथ्वी से दिखाई नहीं देता है, उसे ..... ग्रहण कहते है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सामान्यतया किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है। जब कोई खगोलीय पिण्ड किसी अन्य पिण्ड के पीछे आ जाता है या किसी खगोलीय पिण्ड का प्रकाश अन्य पिण्ड के द्वारा बाधित होता है, तब ग्रहण होता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन मुख्यतया ग्रहण के दो भेद है – सूर्यग्रहण एवं दूसरा चन्द्रग्रहण। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। पृथ्वी स्वयं परप्रकाश एवं ईषत् दीर्घ गोलाकार है, इससे इसका जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है, उसके विपरीत भाग में सूच्याकार (सूची सी आकृति) इस भूच्छाया में

जब चन्द्रमा प्रवेश करता है, तब वह क्रमश: अन्धकार से आच्छादित होने लगता है। इसी

को 'चन्द्रग्रहण' कहते है। ऐसी घटना केवल पूर्णिमा को ही होती है इस कारण पूर्णिमा को ही चन्द्रग्रहण हो सकता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य और पृथ्वी के मध्यवर्ती हो तो सूर्यरश्मि चन्द्र से अवरूद्ध होती है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। सूर्य और चन्द्रमा के संगमकाल में अर्थात् अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना होती है। यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एवं प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण होता। क्योंकि उस काल में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सूत्र में रहने से चन्द्र द्वारा सूर्यरश्मि बाधित वा भूच्छाया द्वारा चन्द्रबिम्ब छादित होता। किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथ्वी कक्षा समतलस्थ नहीं है। इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग्भाव से सन्धि होती है। जिन राहु, केतु को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान में या तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है, तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी समतलस्थ होती है। अतएव प्रत्येक पूर्णमासी वा अमावस्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ वा निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नहीं होता।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहण – गृह्णाति इति ग्रहणम्। ग्रहण एक आकाशीय घटना है, जो दो बिम्बों के कारण निश्चित कालावधि में घटित होता है। मुख्यतया दो ग्रहण होते है – चन्द्रग्रण एवं सूर्यग्रहण।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

शर – शर का अर्थ होता है दूरी। ग्रह से बिम्ब की दूरी। गणित ज्योतिष में इसका व्यापक महत्व होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते है। इसी तिथि को शराभाव में सूर्यग्रहण संभव होता है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा संज्ञक कहा गया है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही शराभाव में होता है।

उपराग – उपराग ग्रहण का पर्याय है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. केतु 2. पूर्णचन्द्रग्रहण 3. सूर्यग्रहण 4. 6 राशि 5. आंशिक सूर्यग्रहण

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - कमलाकर भट्ट, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी, पर्वसम्भवाधिकार

(ख) ऋग्वेद – ५/४०/५/९

(ग) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी,

मध्यमाधिकार -३

(घ) वृहद्दैवज्ञरंजन – प्र. ३३ श्लोक ३

(ड.) निर्णयसिन्धु - प्र. परि.- ग्रहण निर्णय।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वृहद्दैवज्ञरंजन – मूल लेखक:- रामदीन दैवज्ञ, टिकाकार – मुरलीधर चतुर्वेदी

निर्णयसिन्धु – कमलाकर

मुहूर्त्तचिन्तामणि – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – आचार्य कमलाकर भट्ट

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चन्द्रग्रहण का वर्णन कीजिये।
2. सूर्यग्रहण का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. चन्द्र एवं सूर्यग्रहण सम्भवासम्भव को अपने शब्दों में लिखिये।
4. ग्रहण में शुभाशुभ कृत्य का उल्लेख कीजिये।
5. ग्रहण में धार्मिक तत्वों का विवेचन कीजिये।

इकाई - 3 भूभा विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भूभा परिचय

3.3.1 पात (राहु) विचार

3.3.2 ग्रास विचार

3.4 विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित ग्रास विचार

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – भूभा विचार। इससे पूर्व आपने सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहण से सम्बन्धित भूभा पात (राहु) एवं ग्रास का अध्ययन करने जा रहे है।

सामान्यतया भूभा '**पृथ्वी की छाया**' को कहते है, और पात राहुसंज्ञक होता है। ग्रास ग्रहण का अभिन्न अंग है, जिसके बिना ग्रहण को समझा नहीं जा सकता।

आइए इस इकाई में अब हम लोग भूभा पात (राहु) एवं ग्रास के बारे में जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूभा को समझ लेंगे।
- पात को परिभाषित कर सकेंगे।
- राहु को बता सकेंगे।
- ग्रहण में ग्रास के महत्व को समझा सकेंगे ।
- भूभा, पात एवं ग्रास की गणितीय विधा को जान लेंगे।

3.3 भूभा परिचय

'भू' अर्थात् पृथ्वी तथा 'भा' नाम छाया इस प्रकार पृथ्वी की छाया को 'भूभा' कहते है। ग्रहण में इसका ज्ञान परमावश्यक होता है। भूभा, पात एवं ग्रास का सम्बन्ध ग्रहण से है। सर्वप्रथम भूभा को यहाँ समझते है -

रविकर्ण को भूव्यास से गुणाकर भूव्यासोन रविव्यास से (भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है। उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्ण को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुणाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुणाकर चन्द्रकर्ण से भाग देने से 'भूभामान' कला होती है। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया (भूभा) में होकर गुजरता है, तब चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी की वह छाया

चन्द्रमण्डल को ढक लेती है, जिससे चन्द्रमा में काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही 'चन्द्रग्रहण' कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच से गुजरने वाली पृथ्वी की बायीं ओर आधे भाग पर रहने वाले मनुष्यों को चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है।

सूर्यबिम्ब के बहुत बड़ा होने तथा पृथ्वी के छोटे होने के कारण पृथ्वी की छाया हमारी छाया की भाँति न होकर काले ठोस शंकु के समान सूच्याकार होती है और चन्द्र कक्षा को पारकर बहुत दूर तक निकल जाती है। अर्थात् भूभा (पृथ्वी की छाया) सूच्याकार होती है। इसका वर्णन आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में इस प्रकार किया है –

भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुत्वात्पृथिव्या: प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शक्तिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता।।

आकाश में फैली हुई पृथ्वी की यह छाया (भूभा) लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अत: यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए यह छाया कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु सदृश इस प्रच्छाया के साथ ही शंकु के ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए जब पृथ्वी की उपच्छाया में पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छाया के समीप आ जाते हैं, त्यों ही उन पर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब वह उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छाया के भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णमास चन्द्रग्रहण लग जाता है।

रात्रि में दिखलायी देने वाला अन्धकार पृथ्वी की छाया है। यह छाया जब चन्द्रमा पर पड़ जाती है, तब चन्द्रमा पर ग्रहण लगा कहा जाता है। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह, अत: वे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी जैसे सूर्य की परिक्रमा करती है, अत: पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनों के भ्रमण क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमा को पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच हो जाती है। उसकी छाया शंकुवत् होती हैं। जब वह छाया चन्द्रमा पर पड़ जाती है अथवा कहा जाय कि चन्द्रमा अपनी गति के कारण पृथ्वी की छाया शंकु में प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अंश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्र के ढकने की अवस्था में सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अंशत: ढकने पर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी और चन्द्रमा के मार्ग एक सतह में नहीं है। वे एक दूसरे के साथ ५ अंश का कोण बनाते हैं,जिससे ग्रहण का अवसर प्रतिपूर्णिमान्त को नहीं होता है। एक सतह में दोनों बिम्बों का यदि भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावस्या को चन्द्र-सूर्यग्रहण होते। यहाँ ध्यातव्य है कि चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा से ५८ अंश के कोण पर झुकी हुई है और यह भी है

कि चन्द्रमा की पातरेखा चल है। पातरेखा की परिक्रमा का समय प्राय: १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधि के बाद ग्रहणों के क्रम की पुनरावृत्ति होती है।

भूभार्द्ध ज्ञान -

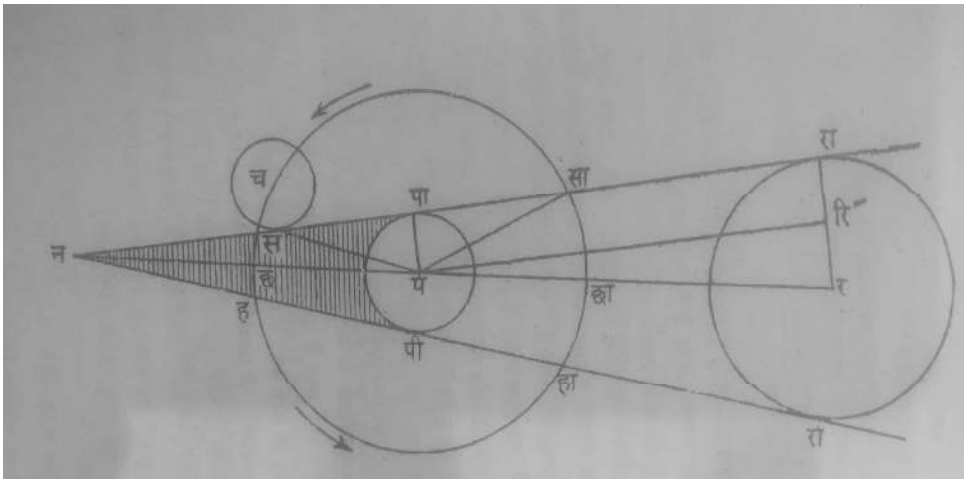

माना कि उपर के क्षेत्र में च चन्द्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स बिन्दु पर प्रवेश कर रहा है, इसलिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और पृथ्वी की सामान्य स्पर्शरेखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वी की छाया बनती है, जिसकी नोक न है। सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्यायें र रा और प पा स्पर्शरेखा रा पा के समकोण पर है। प रि रेखा पा रा के समानान्तर है।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वी के केन्द्र पर छाया की उस त्रिज्या से बनता है जो चन्द्रमा की कक्षा में है इसलिए इससे चन्द्रकक्षा में भूभा के आकार का पता चलेगा।

$$< \text{रि प र} = \frac{\text{रि र}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{रा रि}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{पा प}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र}}{\text{प र}} - \frac{\text{पा प}}{\text{प र}}$$

= सूर्य की त्रिज्या – सूर्य का लम्बन = त्र – ल

त्र और ल से सूर्य की त्रिज्या और लम्बन सूचित किये गये है।

< स प छ = < प स पा - < प न पा

= < प स पा - < रि प र

क्योंकि प रि और न पा रा समान्तर है और न प र दोनों को काटता है।

यहाँ < प स पा = प पा = चन्द्रमा का लम्बन = ला

ला को चन्द्रमा का परम लम्बन या क्षितिज लम्बन मान लेने में बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा। इसलिए –

< स प छ = ला – (त्र – ल) = ल + ला – त्र

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के क्षितिज लम्बनों के योगफल से सूर्य की त्रिज्या का कोणात्मक मान यदि घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या का कोणात्मक मान होता है। इसी को भूभार्द्ध कहते है।

सूर्यसिद्धान्त में कथित भूभा के व्यास का परिमाण –

शशाङ्ककक्ष्यागुणितो भाजितो वाऽर्ककक्ष्यया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां तिथ्याप्तो मानलिप्तिका:।।
स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यासगुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरम्।।
मध्येन्दुव्यासगुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यास्तु तमो लिप्ताश्च पूर्ववत्।।

अर्थात् चन्द्रमा की स्पष्ट गति को पृथ्वी के व्यास से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा की मध्यम गति से भाग देने पर जो लब्धि आती है, उसे सूची कहते है। सूर्य के स्फुट व्यास से पृथ्वी के व्यास को घटाकर शेष को चन्द्रमा के मध्यम व्यास से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य के मध्यम व्यास से भाग दे दो। लब्धि को सूची से घटा देने पर जो शेष आयेगा वह चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास योजनों में आ जायेगा। चूँकि चन्द्रकक्षा का १५ योजन एक कला के समान होता है। अत: इसको १५ से भाग देने पर भूभा का व्यास कलाओं में ज्ञात हो जायेगा।

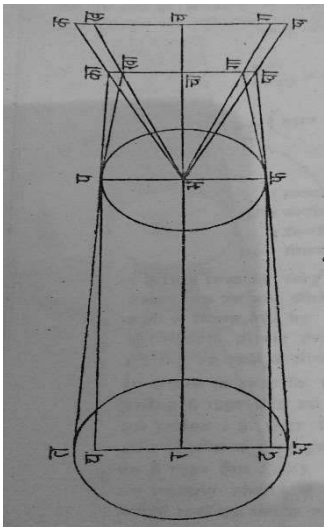

प्रस्तुत क्षेत्र में चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों को का और रा अक्षरों से सूचित किया जायेगा। यदि चन्द्रमा और सूर्य के महायुगीन भगणों को महायुगीन सावन दिनों से भाग दे दिया जाय और

लब्धि की कलायें बनायी जायें तो चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियाँ क्रमानुसार ७९० कला ५६ विकला और ५९. १३६२ होती है। पृथ्वी का व्यास १६०० योजन माना गया है (योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधि र्भवेत्।।) इन मानों के आधार पर उपर्युक्त श्लोक को इस प्रकार समझा जा सकता है –

$$\text{सूची} = \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०.५६}$$

$$\text{सूर्य का स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९.१३६२}$$

चन्द्रकक्षा में भूभा का योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०.५६} - \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९.१३६२} - १६०० \times \frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसका १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षा में भूछाया का कलात्मक व्यास

$$= १०६\frac{२}{३} \times \frac{\text{चा}}{७९०.५६} - ३२ \times \frac{\text{रा}}{५९.१३६२} + ७.८८$$

जिस समय चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियाँ इनकी मध्यम गतियों के समान होंगी उस समय $\frac{\text{चा}}{७९०.५६}$ और $\frac{\text{रा}}{५९.१३६२}$ एक के समान होंगे। ऐसी दशा में भूभा का कलात्मक व्यास

$१०६.६७ - ३२ + ७.८८ = ८२.५५$।

भूभार्द्ध वाली क्षेत्र की सहायता से पूर्व में कहा जा चुका है कि भूभार्द्ध अर्थात् चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का अर्धव्यास ४१ कला ५७ विकला होता है, जिससे पृथ्वी की छाया का व्यास ८४ कला के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्यसिद्धान्त के नियम से पृथ्वी की छाया का व्यास जितना आता है वह नवीन रीति से निकाले हुए व्यास के प्राय: समान ही होता है। यद्यपि उसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध है। भारतीय रीति से भूभा के व्यास का जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६.६७,३२ और ७.८८ के योग वियोग से सिद्ध होता है।

सिद्धान्तशिरामणि में कथित भूभा व्यास –

मूल श्लोक:-

बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तु संख्यानीन्दो: खनागाम्बुधि योजनानि।

भूव्यासहीनं रविबिम्बमिन्दुकर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम्।।

भूविस्तृतिर्लब्धफलेन हीना भवेत् कुभाविस्तृतिरिन्दुमार्गे।।

अर्थात् सूर्यबिम्ब का व्यास ६५२२ योजन तथा चन्द्रबिम्ब का व्यास मान ४८० योजन होता है। भूव्यास को रवि बिम्ब व्यास में से घटाकर चन्द्र के कर्ण से गुणा करके सूर्य कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल को भूव्यास में से घटाने से चन्द्रमार्ग (चन्द्रस्थान) पर कुभा (भूभा) का विस्तार (व्यास) होता है। ये योजनात्मक बिम्ब हैं। कुभा के मान को राहु का योजनात्मक मान कहा है।

इसकी उपपत्ति बतलाते हुए आचार्य का कथन है कि जिस दिन सूर्य की स्फुट गति मध्यगति तुल्य हो उस दिन सूर्योदय काल पर चक्रकला व्यासार्ध तुल्य दो यष्टि केदृ तथा दृस्प के मूल के मिलान बिन्दु दृ से ग्रह के वेध से जो केस्प का मान होता है वह रविबिम्ब कला होता है।

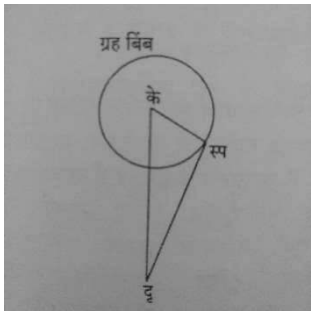

चित्र में के = ग्रहबिम्ब का केन्द्र है। दृ = दृष्टि स्थान है। दृके = दृष्टिसूत्र है। दृष्टि स्थान दृ से ग्रह बिम्ब की स्पर्श रेखा = दृस्प है। के स्प= ग्रह बिम्ब व्यासार्ध है। ग्रह बिम्ब व्यासार्ध के सम्मुख दृष्टि स्थान गत कोण = स्फुट बिम्बार्धकला < दृस्प के = ९०°। उच्च स्थान में ग्रहबिम्ब छोटा तथा नीच स्थान में बड़ा होता है तथा वहाँ गति भी क्रमश: छोटी तथा अधिक होती है। अत: बिम्बों की निष्पत्ति गति की निष्पत्ति के तुल्य होती है। रविबम्ब कला ३२।३१।३३ कलादि होता है तथा पूर्णिमा को चन्द्रमा की मध्यमगति स्पष्ट ३२।०।९ कला प्राप्त होती है। बिम्ब कला को योजनात्मक करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना मान का बिम्ब होता है तो पठित कर्ण योजन में कितना होगा? इस प्रकार करने से ६५२२ योजन प्राप्त होता है, यह सूर्यबिम्ब मान है तथा चन्द्रबिम्ब मान ४८० तुल्य प्राप्त होता है। सूर्य के व्यास से भूमि के व्यास अल्प होने पर ही उसकी छाया सूचिकार होगी तथा दूर तक चन्द्रमा कक्षा से आगे तक जाती है। रविकर्ण में रविभूमि व्यासान्तर योजन ४९४१ प्राप्त होते हैं तो चन्द्र कर्ण में कितने होंगे? फल भूव्यास के अपचय योजन होते है। इसमें से भूव्यास घटाने से चन्द्र कक्षा में भूभा का व्यास होता है।

3.3.1 पात (राहु) विचार –

गणित ज्योतिष के अन्तर्गत पात के सन्दर्भ में 'गोल' में यह कथन है कि –

नाडिका क्रान्तिवृत्तेत्थ योगौतु यौ।
गोलसन्धी तथा क्रान्ति पातो स्मृतौ।।

अपि च –

एवं चन्द्रस्य यौ पातौ तत्राद्यो राहुसंज्ञक:।
द्वितीय: केतु संज्ञस्तौ ग्राहकौ चन्द्रसूर्ययो:।।

अर्थात् नाड़ी-क्रान्तिवृत्त दो स्थानों पर मिलते हैं जिन्हें पात, सम्पात तथा गोलसन्धि के नामों से जानते हैं।

चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु (पात) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं।

चन्द्रविमण्डलार्धमुत्तरदिगस्थपात: राहुसंज्ञकस्तथा दक्षिणदिगस्थपात: केतु: संज्ञकश्च।।

पर्वान्त काल में सूर्य, चन्द्रमा और पात को स्पष्ट करने की रीति –

गतैष्यपर्वनाडीनां स्ववफलेनोन संयुतौ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा।।

जिस समय के सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समय के पर्वान्त काल अर्थात् पूर्णमासी या अमावस्या के अन्त काल का जो अन्तर हो उतने समय की सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियाँ जानकर उनको सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट भोगांशों से क्रमश: घटाने या जोड़ने से जो आवें उन्हीं को पर्वान्तकालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्र समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल के पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये।

परन्तु पात (राहु) का स्पष्ट स्थान जानने के लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो उतने समय की पात की गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पात की गति उल्टी होती है।

सूर्यसिद्धान्त में पात के नाम से एक 'पाताधिकार' का ही उल्लेख किया गया है। वहाँ मुख्यत: वैधृति और व्यतिपात नाम के पात की चर्चा की गयी है। पातों के स्वरूप और स्वभाव का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

तुल्यांशुजालसम्पर्कात् तयोस्तु प्रवाहाहत:।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते।।
विनाशयति पातोऽस्मिन् लोकानामसकृद्यत:।
व्यतीपात: प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृत:।।
स कृष्णो दारूणवपुर्लोहिताक्षो महोदर:।

सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयो भूय: प्रजायते।।

अर्थात् क्रान्तिसाम्य कालिक सूर्य और चन्द्र के किरणों के सम्पर्क से तथा परस्पर दृष्टियों के क्रोध से उत्पन्न अग्नि, जो प्रवहवायु के वेग से आहत होकर प्रज्वलित होती है, वह लोक के लिए अशुभफलदायक होती है। जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती है तब यह पातरूप अग्नि बार-बार लोक के मंगलों का नाश करती है इसलिए यह व्यतीपातसंज्ञक पात प्रसिद्ध है। यही व्यतीपातसंज्ञक अग्नि नाम भेद से वैधृतिपात संज्ञक होती है।

यह पात कृष्णवर्ण वाला, कठोर एवं भयंकर शरीरवाला, लाल नेत्रों से युक्त, विशाल उदरवाला, सबका अनिष्ट करने वाला भयानक वह (अग्निपुरूप रूपी पात) बार-बार उत्पन्न होता है। प्राय: एक मास में दो बार पात की स्थिति आती है। यह उपर वर्णित पात (राहु) से भिन्न है। नीचे दिए गए चित्र में छ प क्रान्विृत्त, च प चन्द्र कक्षा, प चन्द्रमा का पात, छ भूच्छाया (भूभा) का केन्द्र, च स्पर्श काल के समय चन्द्र का केन्द्र, चा सम्मीलन काल के समय चन्द्रमा के केन्द्र, चि उन्मीलन के समय चन्द्रकेन्द्र, ची मोक्षकाल के समय चन्द्रकेन्द्र और फ ग्रहण के मध्यकाल के समय चन्द्र केन्द्र हैं।

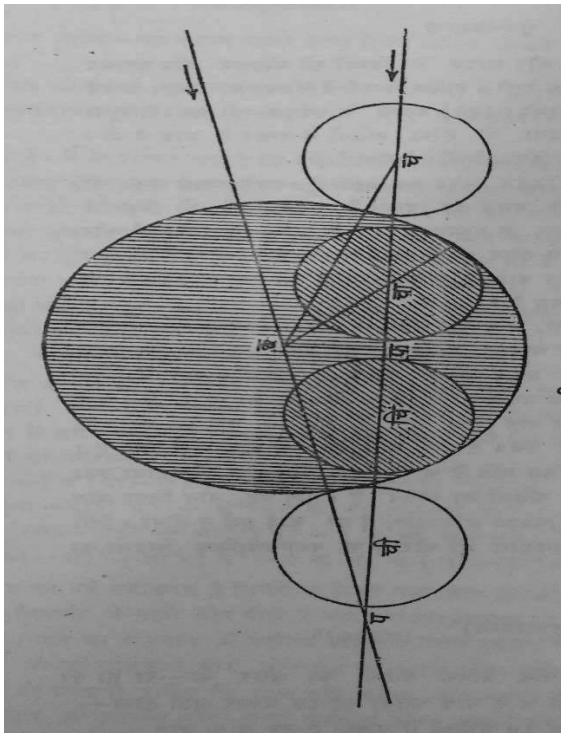

3.3.2 ग्रास विचार –

सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रास मान –

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयो:।
योगार्धात् प्रोज्झय यच्छेषं तावच्छनं तदुच्यते।।
ग्राह्यमानाधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा।

योगार्धादधिके न स्याद् विक्षेपे ग्राससम्भव:।।

अर्थात् छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है। ग्राह्यमान से ग्रासमान अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण और न्यून हो तो न्यून (खण्ड) ग्रहण होता है। मानैक्यार्ध से शर अधिक होने पर ग्रहण सम्भव नहीं होता।

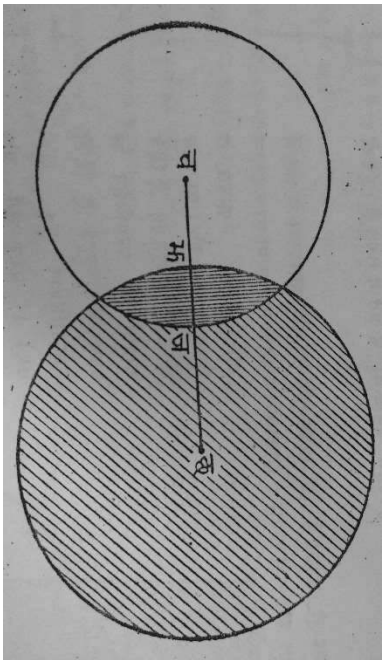

ग्रहणे छादयितुं योग्य: स: छाद्य:। छादयति य: स: छादक:। अर्थात् ग्रहण में जिसके द्वारा छादन होता है, उसे छादक बिम्ब तथा जिसका छादन होता है वह छाद्य बिम्ब कहलाता है। चन्द्रग्रहण में सूर्य से नीचे रहने के कारण चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भूभा (भूच्छाया) में प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमा को भूभा ढक लेती है। चन्द्रग्रहण में भूभा छादक होती है। चन्द्रमा छाद्य होता है। और सूर्यग्रहण में चन्द्रमा छादक होती है सूर्य छाद्य। सामान्यतया ऐसे समझ सकते है कि जिसका ग्रहण होता है, वह छाद्य जिसके द्वारा ग्रहण होता है उसे छादक बिम्ब कहते हैं। उपर के चित्र में चन्द्रग्रहण में छ छादक और च छाद्य है और सूर्यग्रहण में यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायेगा। ग्रास का अर्थ छादक द्वारा छाद्य का जितना भाग ढक लिया जाता है, उसी से है।

अभ्यास प्रश्न -

1. निम्न में भूभा क्या है?

क. भूच्छाया ख. पृथ्वी की छाया ग. महीच्छाया घ. उपर्युक्त सभी

2. चन्द्रग्रहण में छादक बिम्ब कौन होता है?

   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. पृथ्वी घ. भूभा

3. चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्या कहलाता है?

   क. पात (राहु) ख. केतु ग. विक्षेप घ. शर

4. ग्रासमान का सम्बन्ध किससे है?

   क. छाद्य बिम्ब से ख. छाद्य-छादक बिम्ब से ग. विक्षेप से घ. ग्रह से

5. छादयति य: स: .....।

   क. छाद्य ख. छादक: ग. विक्षेप: घ. पात

6. चन्द्रग्रहण कब होता है?

   क. अमावस्या को ख. पूर्णिमा को ग. पूर्णिमायां शराभाव में घ. कोई नहीं

3.4 अन्य ग्रन्थों में कथित ग्रासमान विचार

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रासमान -

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्यखण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम्।
तच्छाद्यबिम्बाधिकं यदा स्याज्ज्ञेयं च सर्वग्रहणं तदानीम्।।

अर्थात् छाद्य तथा छादक के मानैक्यार्ध में से शर को घटाने से प्राप्तफल स्थगित का प्रमाण होता है। यदि इसका मान छाद्य के बिम्ब से अधिक हो तो पूर्ण ग्रहण होता है।

इसकी उपपत्ति इस प्रकार कही गयी है कि सूर्य से छ: राशि अन्तर पर क्रान्तिवृत्त में भूच्छाया भ्रमण करती है। अत: पूर्णमास्यन्त पर भूच्छाया तथा चन्द्रमा की समान स्थिति होती है, किन्तु याम्योत्तर अन्तर शर (विक्षेप) तुल्य होता है। यह शर छाद्य तथा छादक के बिम्ब के मध्य अन्तर तुल्य होता है। यह यदि बिम्बैक्य अर्ध तुल्य हो तो इनके बिम्ब प्रान्तों का मात्र संयोग (स्पर्श) होता है। यदि शर बिंबमानैक्यार्ध से अल्प हो तो छाद्य बिम्ब छादक बिम्ब में प्रवेश करता है। अत: इस प्रकार स्थगित प्रमाण आचार्य ने कहा है। यह स्थगित मान यदि छाद्य बिम्ब से अधिक हो तो सर्व अर्थात् सम्पूर्ण ग्रहण होता है।

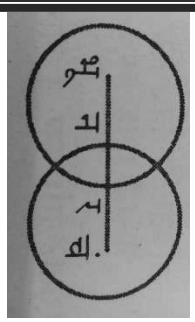

चित्र में भू = पृथ्वी की छाया का केन्द्र है। चं = चंद्रबिम्ब केन्द्र है। चं न = चन्द्रबिम्ब व्यासार्ध है। भू र = भूच्छायाबिंब व्यासार्ध है। न र = ग्रास मान है।

चित्र के अनुसार – भूर + चं न = भू र + र चं + न र

= भू चं + न र

भूभा बिम्बार्ध + चन्द्र बिम्बार्ध = चन्द्र शर + ग्रास

मानैक्यार्ध = चन्द्रशर + ग्रास

अत: मानैक्यार्ध - चन्द्र शर = ग्रास मान। स्पष्ट हुआ। चन्द्र बिम्ब अर्थात् ग्राह्य बिम्ब से ग्रास मान अधिक होने पर पूर्ण ग्रहण होगा।

ग्रहलाघव में कथित ग्रासानयन –

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा। छादकच्चदाद्यमानैक्यखण्डं कुरू।

तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यदा। ग्राह्यहीनावशिष्टं तु खच्छन्नकम्।।

सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को आच्छादित करता है तथा चन्द्रग्रहण में भूमि की छाया चन्द्रमा को आच्छादित करती है। छाद्य और छादक के बिम्बों का योग कर उसके आधे (मानैक्य खण्ड) में शर घटाने से शेष ग्रासमान होता है। ग्रासमान से छाद्य बिम्ब घटाने पर शेष खग्रास होता है।

उदाहरण –

कल्पना किया कि - छादक (भूभा) बिम्ब का मान = २७।२४ है, छाद्य (चन्द्रमा) बिम्ब का मान -१०।४९ है। अत: इन दोनों का योग किया तो ३८।१३ मानैक्य हुआ इसका आधा १९।६ मानैक्यार्ध या मानैक्यखण्ड कहलाता है। इसमें शर ५।३५ घटाने से १३।३१ ग्रासमान हुआ। यह छाद्य बिम्ब १०।४९ से अधिक है। अत: ग्रासमान १३।३१ से १०।४९ को घटाने से शेष २।४२ खग्रास हुआ।

इष्टग्रासानयनम्-

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयो:।

भुक्त्यरन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ता: कोटिलिप्तिका:।।

अर्थात् इष्ट घटयादिमान को स्पर्शस्थितयर्ध घटयादि में घटाने से जो शेष रहें, उनको सूर्य-चन्द्र के गत्यन्तर से गुणाकर ६० का भाग देने पर, फल कोटिकला होती है। यहाँ ग्रहण के आरम्भ से मध्यग्रहणपर्यन्त इष्टग्रास घटिका होती है।

मानैक्यखण्ड में इष्टग्रास को घटाकर शेष के वर्ग में तात्कालिक शर का वर्ग घटाकर, शेष का वर्गमूल लेने से चन्द्रग्रहण में कोटिलिप्ता होती है। सूर्यग्रहण में इस प्रकार से प्राप्त लब्धि स्पष्ट कोटिकला होती है। इन कोटिकलाओं को ६० से गुणाकर सूर्य-चन्द्र के गत्यन्तर का भाग देने से प्राप्त घटिकादि लब्धि स्वकीय स्थित्यर्ध में घटा देने से इष्टग्रास घटिका होती है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि 'भू' अर्थात् पृथ्वी तथा 'भा' नाम छाया इस प्रकार पृथ्वी की छाया को 'भूभा' कहते है। ग्रहण में इसका ज्ञान परमावश्यक होता है। रविकर्ण को भूव्यास से गुणाकर भूव्यासोन रविव्यास से (भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है। उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्ण को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुणाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुणाकर चन्द्रकर्ण से भाग देने से 'भूभामान' कला होती है। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया (भूभा) में होकर गुजरता है, तब चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी की वह छाया चन्द्रमण्डल को ढक लेती है, जिससे चन्द्रमा में काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही 'चन्द्रग्रहण' कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच से गुजरने वाली पृथ्वी की बायीं ओर आधे भाग पर रहने वाले मनुष्यों को चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है। सूर्यबिम्ब के बहुत बड़ा होने तथा पृथ्वी के छोटे होने के कारण पृथ्वी की छाया हमारी छाया की भाँति न होकर काले ठोस शंकु के समान सूच्याकार होती है और चन्द्र कक्षा को पारकर बहुत दूर तक निकल जाती है। अर्थात् भूभा (पृथ्वी की छाया) सूच्याकार होती है। आकाश में फैली हुई पृथ्वी की यह छाया (भूभा) लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अत: यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए यह छाया कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु सदृश इस प्रच्छाया के साथ ही शंकु के ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए जब पृथ्वी की उपच्छाया में पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छाया के समीप आ जाते हैं, त्यों ही उन पर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब वह उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छाया के भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णमास चन्द्रग्रहण लग जाता है। अर्थात् नाड़ी-क्रान्तिवृत्त दो स्थानों पर मिलते हैं जिन्हें पात, सम्पात तथा

गोलसन्धि के नामों से जानते हैं। चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु (पात) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं। छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है। ग्राह्यमान से ग्रासमान अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण और न्यून हो तो न्यून (खण्ड) ग्रहण होता है। मानैक्यार्ध से शर अधिक होने पर ग्रहण सम्भव नहीं होता।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

भूभा – भू का अर्थ पृथ्वी और भा का अर्थ छाया होता है। इस प्रकार भूभा का अर्थ भूमि की छाया हुआ।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

पात – चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त का सम्पात दो स्थानों पर होता है। प्रथम सम्पात को पात (राहु) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते है।

ग्रास – ग्रास से तात्पर्य छादक बिम्ब द्वारा छाद्य बिम्ब को ढकने से है। ग्रहणकाल में जितना भाग ढकता है, उतना ही ग्रासमान माना जाता है। यह सामान्य बात है। विशेषत: सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. घ 2. घ 3. क 4. ख 5. ख 6. ग

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूभा से आप क्या समझते है।
2. भूभा साधन कीजिये।
3. चन्द्रग्रहण में पात (राहु) क्या है। लिखिये।
4. विभिन्न सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्णित ग्रास का उल्लेख कीजिये।
5. सिद्धान्तशिरोमणि एवं सूर्यसिद्धान्त के अनुसार भूभा का वर्णन कीजिये।
6. ग्रहण में 'भूभा' की क्या भूमिका है।
7. ग्रहण में पात एवं ग्रास का महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई 4 लम्बन नति

इकाई की संरचना

3.4 प्रस्तावना

3.5 उद्देश्य

3.6 लम्बन एवं नति परिचय

4.4 लम्बन एवं नति का गणितीय पक्ष

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – लम्बन एवं नति। इससे पूर्व आपने शर एवं बलन से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप लम्बन एवं नति के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहण' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों का इस शास्त्र के प्रति और विश्वास बढ़ जाता है। सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहण एक खगोलीय घटना है, जो आकाश में दो पिण्डों के कारण होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहण' के बारे में उसकी गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- लम्बन को परिभाषित कर सकेंगे।
- नति को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहण' में लम्बन एवं नति की उपयोगिता को जान लेंगे।
- ग्रहण में लम्बन एवं नति के महत्व को समझा सकेंगे।

4.3 लम्बन एवं नति परिचय

लम्बन नति का प्रयोजन -

अमावस्यान्तकाल पर समकल चन्द्र-सूर्य को द्रष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत (झुका हुआ) देखता है उनको वह भूकेन्द्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देख पाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चन्द्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चन्द्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चन्द्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से उपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही द्रष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण द्रष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से लम्बन नति को कहा गया है, जिनके कारण सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते हैं। यथा भास्कराचार्य जी ने लम्बन नति के प्रयोजन को अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है -

दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्वर्धोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि।।

नति-लम्बन का कारण -

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्।
भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।।
तदृकसूत्राद्धिमरूचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः।
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्।।
समकलकाले भूभा लगति मृगांके यतस्तयाम्लानम्।।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती।
पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति।।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः।
भानोर्बिम्बपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता।।
अनुपातात् तदैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम्।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात्।।

भूमध्य में स्थित द्रष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते है। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित द्रष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ दिखाई देता है। अतः सूर्य चन्द्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के उपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छादक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्रग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बडा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैर्घ्यता अनुपात से साधित करते है। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिम्ब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

अनुपात द्वारा लम्बन ज्ञान -

त्रिभोनलग्नं तरणिं प्रकल्प्य तल्लग्नयोर्यः समयोऽन्तरेऽसौ।
त्रिभोनलग्नस्य भवेद्द्युयातः शङ्क्वाद्यतस्तस्य चरान्तकाद्यैः।।
त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिंजनी कृताहता व्यासदलेन भाजिता।
हतात् फलाद्वित्रिभलग्नशंकुना त्रिजीवयाप्तं घटकादि लम्बनम्।।

दर्शान्त काल पर लग्न ज्ञात करके उसको वित्रिभ करके, उस वित्रिभ के भुक्त भोग्य के अन्तर को लग्न के उदय काल में जोड़ देने से वित्रिभ का उदय काल प्राप्त होता है। इस काल से वित्रिभ लग्न जनित कुज्या, द्युज्या, अन्त्या तथा पूर्व में पठितानुसार शंकु का साधन करे। शंकु से दृग्ज्या तथा उसका छायाकर्ण साधित करे। फिर त्रिभोन लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या का साधन करे।

पुनः लम्बन ज्ञात करने के लिए अनुपात करना चाहिए कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या से चार घटी लम्बन (परम लम्बन) प्राप्त होता है तो अभीष्ट में क्या? प्राप्तफल मध्यम लग्न होगा। इसको स्फुट करने के लिए दूसरा अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभलग्न शंकु का इतना लम्बन होता है तो इतने नत अन्तर में क्या? प्राप्त फल स्फुट लम्बन होगा। त्रिभोन लग्न में से सूर्य के अन्तर की ज्या को चार से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को वित्रिभ लग्नशंकु से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से घटकादि लम्बन स्फुट होता है।

लम्बन नति को यहाँ क्षेत्र में देखकर आप समझ सकते हैं -

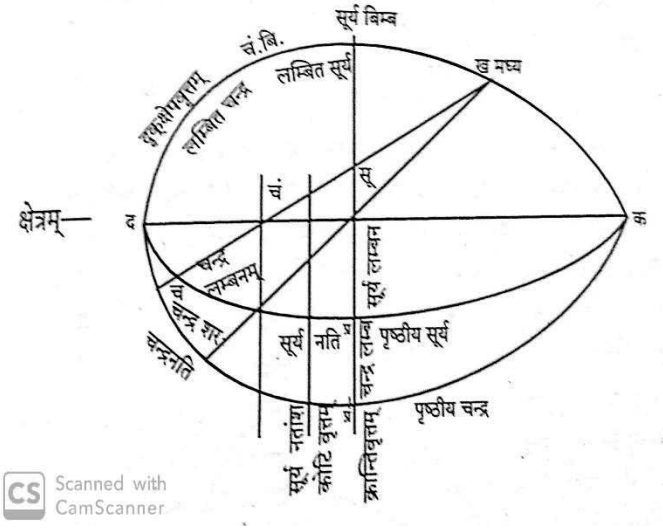

Scanned with CamScanner

क्षेत्र में - सू पृ = सूर्य लम्बन, चं पृ = चन्द्र लम्बन, सू पृ – चं पृ = चन्द्रस्पष्ट लम्बन – सूर्य स्पष्ट लम्बन = गर्भीय दर्शान्त में स्पष्ट लम्बन = पृ पृ।

सूर्यग्रहण में लम्बन होता है। दर्शक भूमि पर खड़ा होकर सूर्य से चन्द्रमा को कुछ लम्बित देखता है तो दोनों बिम्बों का पूर्वापरान्तर को लम्बन दक्षिण से उत्तर का अन्तर नति कहलाता है।

भास्कराचार्य जी के अनुसार –

5 जिस समय ग्रह खस्वस्तिक पर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकार का लम्बन नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के केन्द्र से ओर द्रष्टा से ग्रह तक खींची गयी रेखायें एक ही होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भास्कराचार्य ने पृथ्वी को पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात स्पष्ट होती है।

6 जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्न पर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्तिवृत्त के उस बिन्दु पर होता है जो उदय लग्न से तीन राशि कम होता है तब ग्रह में भोगांश लम्बन नहीं होता, केवल नति होती है।

7 जिस समय क्रान्तिवृत्त खस्वस्तिक से होता हुआ उर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्तिवृत्त पर होता है उस समय उसमें शरलम्बन नहीं होता, केवल भोगांश लम्बन होता है।

8 किसी समय का भोगांश लम्बन जानने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समय के त्रिभोन लग्न का नतांश या उन्नतांश क्या है, क्योंकि त्रिभोन लग्न के उन्नतांश की ज्या सूत्र का एक अंग है। त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और उन्नतांश की ज्या को अथवा नतांश की कोटिज्या को दृग्गति कहा गया है।

ग्रहों के मध्यम, परम लम्बन मान

ग्रह	भास्कराचार्य के अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकल के वेधों से प्राप्त परम लम्बन		आधुनिक वेधों से प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुत्तम	महत्तम	लघुत्तम	महत्तम
	विकला मान	विकला	विकला	विकला	विकला
सूर्य	२३६.५	८.७	९.०	१८९०	१९५६
चन्द्रमा	.३१६२.३	३१८६	३७२०	१७४०	२०२८
मंगल	१२५.७	३.५	१६.९	४.४	२१.२
बुध	९८२.१	६.४	१४.४	४.८	१०.९
गुरु	२०.०	१.४	२.१	३१.६	४६.७
शुक्र	३८४.५	५.०	३१.४	९.६	६०.०
शनि	८.०	०.८	१.०	१५.८	१९.५

दृष्टि स्थान के भेद अथवा कारण से ग्रह आकाश में अलग देखे जाते हैं। गर्भस्थान की दृष्टि से गर्भीय एवं पृष्ठ स्थान की दृष्टि से देखे जाने पर पृष्ठीय ग्रह दिखाई पड़ता है। चन्द्र एवं सूर्य कक्षा के गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों के अन्तर को दृग्वृत्त में दृग्लम्बन और गर्भीय पृष्ठीय ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्त के अन्तर को क्रान्तिवृत्त में स्फुट लम्बन कहते हैं। तथा गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों (सूर्य-चन्द्र) के शरान्तर को कदम्बप्रोत वृत्त में नति कहते हैं।

नति का परमत्व – वित्रिभ में **परमाल्पिका** – पृष्ठ क्षितिज में

नति का अभाव – खमध्य में

लम्बन का परमत्व – पृष्ठ क्षितिज में **अभाव** – वित्रिभ तथा खमध्य में।

दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्।

लम्बन का भावाभाव एवं धनर्ण विचार –

मूल श्लोक –

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये।
रवौ तदूनेऽभयधिके च तत् स्यादेवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम्।।

अर्थात् अमावस्या का लग्न ज्ञात कर उसका त्रिभोन लग्न ज्ञात करें। प्राप्त त्रिभोन लग्न के समय रवि का लम्बन नहीं होता। सूर्य यदि इससे न्यून अथवा अधिक हो तब इसका लम्बन होता है तथा वह क्रमश: धन एवं ऋण होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य रवि के रहने पर लम्बन नहीं होता है।

यहाँ सर्वप्रथम स्पष्ट करते हैं कि लम्बन क्या होता है? चन्द्रग्रहण में क्योंकि चन्द्रमा भूच्छाया द्वारा आच्छादित होता है अत: वह द्रष्टा की पृथ्वी पर किसी भी स्थिति से दृश्यमान होने में प्रभावित नहीं होता। लेकिन चन्द्रमा जब सूर्यग्रहण में सूर्य को आच्छादित करता है तब उसकी दृश्यस्थिति द्रष्टा के पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर से प्रभावित होती है। यह लम्बन के कारण होता है। यथा -

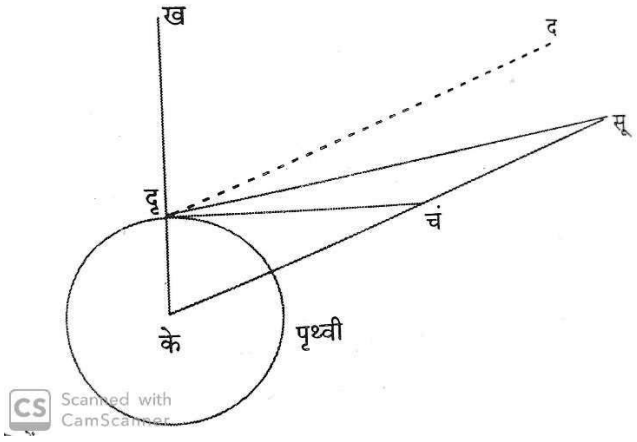

Scanned with CamScanner

क्षेत्र में,

के = भू केन्द्र है।

दृ = द्रष्टा की पृथ्वी के उपर की स्थिति है।

ख = खमध्य है।

चं = चन्द्रमा है।

सू = सूर्य है।

दृ द = रेखा के चं सू के समानांतर खींची गई है।

द्रष्टा भूकेन्द्र (के) से चन्द्रमा को (के चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख के चं = ख दृ द है। लेकिन दृ स्थान पर बैठा हुआ द्रष्टा चन्द्रमा को (दृ चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख दृ चं है तथा –

< ख दृ चं = < ख के चं + < के चं दृ = < ख दृ द + < द दृ चं तथा < दृ चं के, < ख के चं के लिए लम्बन शुद्धि है।

सूर्य के लिए लम्बन शुद्धि < दृ सू के है। यह चन्द्र की लम्बन शुद्धि से अल्प है। < दृ चं के लम्बन का मान होता है।

लग्न से प्राप्त ९० अंश का वृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है वहीं वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त रवि के उपर से तथा दूसरा कदम्बप्रोतवृत्त लंबित रवि के उपर से क्रान्तिवृत्त में जहाँ-जहाँ लगता है उनके बीच का क्रान्तिवृत्त पर चाप रवि का स्पष्ट लम्बन होता है। लेकिन जब सूर्य वित्रिभ लग्न में रहता है तब उसके ऊपर दृग्वृत्त तथा रवि और लम्बित रवि के ऊपर से कदम्ब प्रोत वृत्त एक ही दृक्क्षेप वृत्त होता है। अत: वहाँ पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है।

गर्भीय अमान्तकाल में स्थानाभिप्रायिक रवि और चन्द्रमा एक ही बिन्दु रेखा में होते हैं अत: एक ही दृग्वृत्त में लंबित रवि और लंबित चन्द्र होते हैं। लंबित रवि से लंबित चन्द्र पृष्ठ में लंबित होता है। अत: वित्रिभ से रवि अल्प होने पर लंबित रवि के ऊपरीगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है उससे अधोभाग में लम्बित चन्द्र परिगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में लगेगा। अत: यहाँ शीघ्रगति ग्रह (लंबित चन्द्र स्थान) से मन्दगति (लंबित सूर्य स्थान) के आगे रहने के कारण युति गम्य होती है। अत: गर्भीय अमान्त से पृष्ठीय अमान्त स्पष्ट लम्बान्तर के पश्चात् होता है। इसलिए गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लम्बान्तर के जोड़ने से पृष्ठीय अमान्तकाल होता है। वित्रिभ से रवि अधिक रहने पर लंबित रवि से लंबित चन्द्रमा अधोभाग में होता है। अत: लंबित रवि ऊपर गत कदम्ब प्रोत

वृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात ऊपर होता है अत: मध्यगति ग्रह से शीघ्रगति ग्रह के आगे रहने के कारण युति गत होती है। अत: गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लम्बान्तर को ऋण करने से पृष्ठीय अमान्तकाल होता है।

4.4 लम्बन नति का गणितीय पक्ष –

सूत्र रूप में -

$$\text{लम्बन} = \frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ आचार्य द्वारा दो अनुपात किये गये हैं प्रथम यह कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य हो जाय अर्थात् वित्रिभलग्नऽर्क अन्तर ज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जाय तो क्षितिज पर परमलम्बन का मान 4 नाडी होता है, तब प्राप्त वित्रिभ लग्नार्क अन्तर ज्या में कितना लम्बन होगा? दूसरा अनुपात यह किया है कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य पर न हो तब यदि वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जाय तो तब मध्यम लम्बन $\frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों (सूर्य-चन्द्र) के अन्तर को क्या कहते है?
   क. नति ख. लम्बन ग. वित्रिभ घ. सत्रिभ
2. निम्न में गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों का शरान्तर क्या है –
   क. लम्बन ख. वित्रिभ ग. नति घ. विक्षेप
3. सूर्य एवं चन्द्रमा किस काल में एक ही कक्षा में होते हैं?
   क. पूर्णिमा में ख.अमान्त काल में ग. दशमी तिथि को घ. त्रयोदशी तिथि को
4. लम्बन का अभाव कहाँ होता है?
   क. पृष्ठ क्षितिज में ख. खमध्य में ग. वित्रिभ में घ. सत्रिभ में
5. नति का परमत्व कहाँ होता है?
   क. वित्रिभ में ख. खमध्य में ग. पृष्ठ क्षितिज में घ. दृग्वृत्त में
6. लम्बन एवं नति दोनों का अभाव कहाँ होता है?
   क. वित्रिभ में ख. खमध्य में ग. दृग्वृत्त में घ. कहीं नहीं

नति उपपत्ति -

अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत्।
ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि।
तच्चापांशैर्नतो बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः।।
कक्षयोरन्तरं यत् स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः।।

गर्भीय पृष्ठीय सूर्यचन्द्रग्रह के शरान्तर का नाम नति है। अतः याम्योत्तर दिशा में नति को दर्शायें। जहाँ पहले कक्षामण्डल बताया गया वहॉ दृक्क्षेप मण्डल जानना चाहिए। दर्शान्त में सूर्य तथा चन्द्र के त्रिभोनलग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप है। ब्रह्मगुप्त मतानुसार उसके चापांश के वित्रिभ लग्न का शर संस्कार करने से चन्द्र का दृक्क्षेप चापांश होता है। उनके वृत्तों में खमध्य से स्वस्व दृक्क्षेप चापांश तुल्य सूर्य तथा चन्द्र के नत बिन्दु बनाये, इनकी वित्रिभ संज्ञा है। फिर पूर्ववत् जैसे सूर्यचन्द्र का लम्बन कहा गया है। उसको ही यहाँ पर याम्योत्तर अन्तर नति के नाम से समझना चाहिये। अर्थात् जैसे पूर्व में भूमध्य और भूपृष्ठ से जो सूत्र बनाये गये हैं उनसे जैसे लम्बन कला कही है उसको यहॉ नतिकला कहते हैं। नति का अर्थ चन्द्रसूर्य का अपनी कक्षा में याम्योत्तर अन्तर होता है। वित्रिभ लग्न स्थान पर जो याम्योत्तर अन्तर चन्द्र-सूर्य में होता है वही अन्तर सर्वत्र होता है। इस अन्तर को दृक्क्षेप के द्वारा साधित करने से नति का मान ज्ञात होता है।

दृक्क्षेपमण्डल, त्रिभोन लग्न दृग्मण्डल को कहते है। ब्रह्मगुप्त ने त्रिभोन लग्न से लम्बन तथा नति साधन करने में त्रिभोन लग्न की दृग्ज्या को दृक्क्षेप चन्द्र तथा सूर्य दोनों के लिए कहा गया है। उसके चापांश के लिए यहॉ आचार्य ने कहा है।

स्फुट लम्बन का अर्थ - जहॉ कही सूर्य से नीचे चन्द्रमा जितना नत दिखाई देता है वह वहॉ पर दोनों दृग्वृत्तों गर्भीय सूत्र तथा भूपृष्ठीय सूत्र का अन्तर चन्द्र-सूर्य का पूर्वापर अन्तर होता है।

पूर्वापर तथा दक्षिणोत्तर में ये दोनों अन्तर अपमण्डल में पूर्व दिशा में तथा उसके लम्बवत् दक्षिणोत्तर में क्रमश: होते हैं।

पूर्वापर में होने वाले अन्तर को लम्बन कहा है तथा दक्षिणोत्तर में होने वाले अन्तर को नति के नाम

से जानते हैं। नति लिप्ता तुल्य भुज, दृग्लम्बन कला तुल्य कर्ण तथा इनके वर्गो के अन्तर का मूल कोटि रूप स्पष्ट लम्बन लिप्तिका होता है।

परमलम्बन लिप्ता 48/46 को रविदृग्ज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से दृग्लम्बन कला प्राप्त होते हैं और दृक्क्षेप के द्वारा इसी प्रकार नति का मान प्राप्त होता है।

सूर्य चन्द्र की गति के अन्तर का पन्द्रहवॉ भाग परमलम्बन लिप्ता 48/46 होता है और गति योजन 118,58/45 का पन्द्रहवॉ भाग भूव्यासार्ध 790/35 तुल्य होता है। जो लम्बकला प्राप्त होती है उनको सूर्य, चन्द्र के गति अन्तर से विभक्त करने से लम्बन काल घटियॉ प्राप्त होती है उनको सूर्य, चन्द्र के गति अन्तर से विभक्त करने से लम्बन काल घटियॉ प्राप्त होती है। अर्थात् लम्बनकला × 60 लम्बन काल होती हैं।

गति अन्तर

पूर्वकपाल में सूर्य से चन्द्रमा आगे रहता है तथा पश्चिम कपाल में लम्बित पीछे रहता है।

अतः पूर्वकपाल में लम्बन काल ऋण तथा पश्चिम कपाल में धन होता है क्योंकि शीघ्रगति ग्रह यदि मन्दगति ग्रह से आगे रहता है तो इसका अर्थ है दोनों की युति हो चुँकि तथा यदि पीछे रहता है तो इसका अर्थ है कि गति अब आगे होगी।

याम्योत्तर में जो शर है वह सूर्य-चन्द्र का अन्तर है और नति भी वही है। अतः शर में नति का संस्कार धन-ऋण करने से स्फुट शर प्राप्त होता है।

लम्बन साधन का उदाहरण –

कल्पना किया कि – स्पष्टसूर्य = १०।०३।१५।३६, स्पष्ट चन्द्र = १०।०३।१५।३६ तथा स्पष्ट लग्न = २।१८।७।५७।

पर्वान्तकालीन स्पष्ट लग्न में ३ राशि घटाने से या कम करने से वित्रिभ लग्न = ०७।०३।१५।३६ हुआ। वित्रिभ लग्न की उत्तरा क्रान्ति ४।४० होती है। सायन सूर्य या वित्रिभ के उत्तर गोल में होने से यह ४।४० उत्तरा क्रान्ति हुआ। काशी में दक्षिण अक्षांश = २५।२६, उत्तरा क्रान्ति = ४।४० का भिन्न दिशा से अन्तर = २०।४६ यह नतांश हुआ।

नतांश = २०।४६ का २२ वाँ भाग = ०।५६ हुआ, ०।५६ का वर्ग १।१ यह वर्ग संख्या २ से कम होने से विशेष संस्कार की आवश्यकता नहीं है। इस वर्ग को १२ में जोड़ देने से १२ + १।१ = १३।१

इसका नाम हार है। सूर्य व वित्रिभ के अन्तरांश ७४।५२।२१ का दशमांश = ७/२९ को १४ में घटाने से ६।३१ होता है। दशमांश × १० – दशमांश = ७/२९ × ६।३१ = ४८।४० हुआ। ४८।४० में हार १३।१ का भाग देने से स्वल्पान्तर से घटी =३, पल = ४४ यह लम्बन का घटिकादिक मान गणित से सिद्ध होता है। स्पष्ट सूर्य से स्पष्ट वित्रिभ लग्न अधिक होने से लम्बन धन सिद्ध होता है।

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि अमावस्यान्तकाल पर समकल चन्द्र-सूर्य को द्रष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत (झुका हुआ) देखता है उनको वह भूकेन्द्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देख पाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चन्द्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चन्द्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चन्द्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से उपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही द्रष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण द्रष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से लम्बन नति को कहा गया है, जिनके कारण सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते। भूमध्य में स्थित द्रष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते है। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित द्रष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ दिखाई देता है। अतः सूर्य चन्द्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के उपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छादक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्रग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बडा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैर्घ्यता अनुपात से साधित करते है। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिम्ब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

लम्बन – गर्भीय एवं पृष्ठीय (सूर्य एवं चन्द्र) ग्रह का अन्तर 'लम्बन' कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है।

नति – गर्भीय एवं पृष्ठीय (सूर्य एवं चन्द्र) ग्रहों का शरान्तर 'नति' कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है।

दृग्लम्बन – दृग्वृत्त में स्थित लम्बन दृग्लम्बन कहलाता है।

दर्शान्तकाल – अमावस्यान्त काल।

त्रिभोन – तीन राशि से कम को त्रिभोन कहते है।

दृक्क्षेप – लग्न बिन्दु से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेप कहते हैं।

वित्रिभ - दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा उर्ध्वसम्पात को वित्रिभ कहते हैं।

सत्रिभ - दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा अध: सम्पात को सत्रिभ कहते हैं।

तरणि – सूर्य।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. ख 4. ख 5. क 6. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लम्बन से आप क्या समझते है।
2. नति क्या है?
3. भास्कराचार्य जी के अनुसार लम्बन-नति का प्रयोजन लिखिये।
4. ग्रहण में लम्बन-नति का कारण स्पष्ट कीजिये।
5. लम्बन एवं नति को परिभाषित करते हुए उसका गणितीय साधन कीजिये।
6. लम्बन एवं नति को क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।
7. ग्रहण में लम्बन एवं नति का क्या महत्व है। स्पष्ट रूप से लिखिये।

इकाई – 5 शर एवं बलन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शर एवं बलन परिचय

4.3.1 शर एवं बलन का गणितीय पक्ष

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-302 के पांचवीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– शर एवं बलन। इससे पूर्व आपने भूभा, पात, एवं ग्रास से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहण से जुड़े कुछ और महत्वपूर्ण विषय शर एवं बलन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

शर का शाब्दिक अर्थ होता है – दूरी। इसे विक्षेप भी कहा जाता है। वलतीति वलनम्। सूर्य एवं चन्द्रग्रहण में ये दोनों मुख्य तत्व माने जाते है।

आइए इस इकाई में अब हम लोग सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण से जुड़ी महत्वपूर्ण तत्व शर एवं बलन के बारे में जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- शर को परिभाषित कर सकेंगे।
- बलन को समझा सकेंगे।
- ग्रहण में शर एवं बलन के उपयोगिता को समझ लेंगे।
- शर एवं बलन संस्कार से परिचित हो जायेंगे।
- ग्रहण में शर एवं बलन के महत्व को समझा सकेंगे।।

5.3 शर एवं बलन परिचय

गणित ज्योतिष में ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का अध्ययन किया जाता है। सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का आवश्यक है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं। ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है। यथा –

ग्रहबिम्बकदम्बर्क्षगतं वृत्तं भमण्डले।
यत्र बिन्दौ युतं तत्र तद्ग्रहस्थानमुच्यते।।
बिम्बस्थानान्तरं तत्र मण्डले मध्यम: शर:।
स्थानबिम्बद्युरात्रात्रान्तध्रुर्वप्रोते स्फुट: शर:।।

बलनम् - बलतीतिबलनम्। बलनं त्रिविधम्। ग्रहक्षितिजे नाड़ीक्रान्तिवृत्तयोरन्तरमायनबलनम्। तत्रैव ग्रहक्षितिजे नाड़ीपूर्वापरवृत्तयोरन्तरमाक्षबलनम्। अनयोसंस्कारेण स्फुटबलनं जायते। अर्थात् ग्रहक्षितिजे पूर्वापरक्रान्तिवृत्तान्तस्पष्टबलनम्।।

जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धित क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे।

ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं। इस तरह बलन तीन प्रकार का होता है।

मूल श्लोक -

यस्मात् खांकैस्तु यद् वृत्तं तस्य तत् क्षितिजं स्मृतम्।
ग्रहात् खांकाशकैर्यद्वद् ग्रहक्षितिजमुच्यते।।
आयनं बलनं ज्ञेयं ग्रहक्षितिजेऽन्तरम्।
ग्रहोपरि ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोतवृत्तयो:।।
नाडी-भवृत्तयोरेवमन्तरं तावदेव हि।
अक्षजं बलनं तद्वन नाडिका –समवृत्तयो:।।
अन्तरं तु ग्रहोत्पन्नक्षितिजे वा ग्रहोपरि।
समप्रोतध्रुवप्रोत-वृत्तयोरन्तरं च तत्।।
स्पष्टं तत्रान्तरं ज्ञेयं पूर्वापर-भवृत्तयो:।
ग्रहोरपरि समप्रोत कदम्ब प्रोतयोस्तथा।।

सूत्र - आयनबलन ± आक्षबलन = स्पष्टबलन।

5.3.1 शर एवं बलन का गणितीय पक्ष

चन्द्र (विक्षेप) शरानयन -

सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्या खभै: हता व्यादलेन भक्ता।
सपातशीतद्युतिगोलदिक् स्याद्विक्षेप: इन्दो: स च बाणसंज्ञ:।।

अर्थात् जिस समय पर विक्षेप ज्ञात करना हो उस समय तात्कालिक चन्द्र तथा पात का योग करे। चन्द्रग्रहण के समय भी समकल काल पर चन्द्रमा तथा तात्कालिक पात का योग करना चाहिए। उसकी ज्या को 270 से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने प्राप्तफल कलात्मक चन्द्र विक्षेप होता है जिसकी बाण संज्ञा होती है। यदि सपात चन्द्र छः राषि से अल्प हो तो इस विक्षेप कला की दिषा उत्तर होती है तथा अधिक हो तो विक्षेप कक्षा की दिषा दक्षिण होती है।

उपपत्ति - चन्द्रमा अपने विमण्डल में भ्रमण करता है। क्रान्तिवृत्त तथा चन्द्र विमण्डल का सम्पात पात संज्ञक होता है। यह पात मीनान्त से विलोम दिषा में भ्रमण करता है। पात से आगे तीन राषि अन्तर पर चन्द्र विमण्डल ४।३० अंश क्रान्तिवृत्त से दूर उत्तर की ओर होता है और पात से दक्षिण की ओर पीछे की तरफ विमण्डल तथा क्रान्तिवृत्त का अन्तर ४।३० अंश होता है। विमण्डल गत चन्द्र का क्रान्तिवृत्त से जो अन्तर होता है वह दक्षिणोत्तर विक्षेप होता है। उसको ज्ञात करने के लिए चन्द्र तथा पात का अन्तर ज्ञात करते हैं जिसके लिए चन्द्र तथा पात का योग करते हैं, क्योंकि पात की विलोम गति होती है। इस सपात चन्द्र की ज्या अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में परम २७० कला तुल्य विक्षेप होता है तो प्राप्त सपात चन्द्र में कितना होगा। प्राप्त फजल चन्द्रमा का विक्षेप होता है।

सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में भी चन्द्रमा का परम विक्षेप इस प्रकार कहा है -

भचक्रलिप्ताशीत्यंशैः परमं दक्षिणोत्तरम्।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यंशदनुष्णगुः।।

अर्थात् अपने पात के कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्तिवृत्त के बिन्दु से २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है।

शरस्य स्पष्टीकरण -

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नस्त्रिज्योद्धृतः शरः।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दक्कर्मण्यक्षजे तथा।।

विषुवदवृत्त से स्पष्ट क्रान्ति ध्रुवाभिमुख होती है। क्रातिंग्र पर शर कदम्बाभिमुख होता है। अतः इनके संस्कार करने के लिए क्रान्तिग्र पर जो द्युज्यावृत्त है उसके और शराग्र का जो ऋजु अन्तर है उससे संस्कृत करने से स्फुट होता है। अर्थात् शर और मध्यम क्रान्ति एक वृत्ती धरातल में नहीं होते। अतः उसका अन्तर कोटिरूप में है। शर कर्ण रूप है। इनके वर्गान्तर का मूल द्युज्यावृत्त में भुज है। इस प्रकार

तीन राशि युक्त ग्रह क्रान्तिध्रुव कदम्ब के सूत्रों का अन्तर होता है। इसकी ज्या भुज है। इसकी द्युज्या कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः यदि त्रिज्या में इतनी कोटि होती है तो शर में कितनी होगी?

$$\frac{\text{कोटि} \times \text{शर}}{\text{त्रिज्या}}$$

अतः कोटि रूप शर की ध्रुवोन्मुख ज्या से अक्षकर्म तथा दक्क करते हैं।

शर को निम्न क्षेत्र द्वारा भी समझ सकते है -

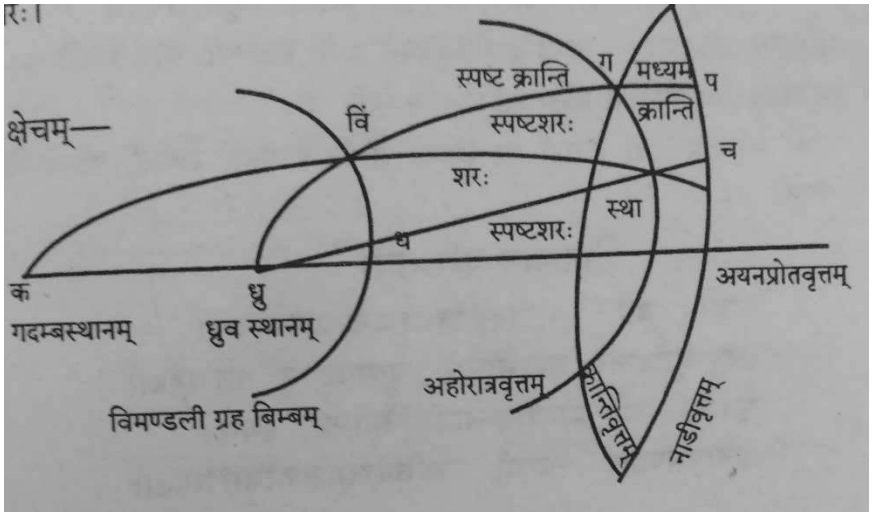

क्षेत्र में वि = विमण्डलीय ग्रहबिम्बम्। स्था = क्रान्तिवृत्त में ग्रहस्थान, विंस्था = विमण्डलीय ग्रह बिम्ब तथा क्रान्तिवृत्तीय ग्रह स्थान का अन्तर शर है। धस्था = विमण्डलीय ग्रह बिम्ब अहोरात्रवृत्त का अन्तर स्पष्टशर है, अथवा विंग = ध्रुवप्रोत्तवृत्त में विमण्डलीय ग्रह स्थान से क्रान्तिवृत्त एवं अहोरात्रवृत्त का अन्तर स्पष्ट शर है, गप = अहोरात्र तथा क्रान्तिवृत्त का सम्पात स्थान से नाड़ीवृत्त का अन्तर मध्यमाक्रान्ति, विं प = विमण्डलीय ग्रहस्थान से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त एवं नाड़ीवृत्त का अन्तर = स्पष्ट शर + मध्यम क्रान्ति = स्पष्ट क्रान्ति होती है।

ग्रह बिम्ब पर गये हुए ध्रुवप्रोत्त वृत्त एवं अहोरात्र वृत्त का अन्तर जो ध्रुव प्रोतवृत्त में होता है वह स्पष्ट शर होता है। विमण्डलीय ग्रह बिम्ब एवं क्रान्तिवृत्त में ग्रह के स्थान के बीच जो कदम्ब प्रातवृत्त का भाग होता है वह शर होता है।

वलन -

खांका हतं स्वद्युदलेन भक्तं स्पर्शादिकालोत्थनतं लवाः स्युः।
तेषां क्रमज्या पलशिञ्जिनीघ्नी भक्ता द्युमौर्व्या यदवाप्तचापम्।।
प्रजायते प्रागपरे नते क्रमादुदग्यमाशं वलनं पलभोद्भवम्।।

जिस समय का बलन साधन करना हो उस समय जो नतघटी हो उसको ९० से गुणा करके चन्द्रग्रहण होने पर रात्रिर्ध से तथा सूर्य ग्रह होने पर दिनार्ध से विभक्त करने से प्राप्तफल अंशादि करते हैं। इनकी क्रमज्या को अक्षज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप अक्षबलन होता है। नत पूर्व होने पर यह उत्तर होता है तथा पश्चिम नत होने पर यह दक्षिण बलन होता है।

विषुववृत्त तथा क्रान्तिवृत्त का सम्पात मेशारम्भ तथा तुलारम्भ बिन्दुओं पर होता है तथा उनके बीच याम्योत्तर अन्तर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है तथ यह परम अन्तर परम क्रान्ति तुल्य होता है। इन पर परम अयनबलन २४ अंश की ज्या तुल्य होता है। वहॉ एक अयन संधि तो दक्षिणोत्तर है और उसके कारण एक पूर्व दिषा में है। वहॉ पर वलन नहीं होता। उसके बाद अनुपात से ग्रह की कोटिक्रमज्या को २४ अंश (जिनांश) की ज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से बलन दिग्बलन ज्या होती है। इसी प्रकार विषुवद्वृत्त से दक्षिणोत्तर क्षितिज में समवृत्त की अक्षांश ज्या तुल्य अन्तर होता है। क्षितिज में अक्षज्या के तुल्य अक्षबलन होता है। इन दोनों, अक्षबलन तथा अयनबलन का योग याम्योत्तर मध्य (स्फुट) बलन होता है। नतक्रमज्या साधित करके उसका अनुपात करने से नत को 90 से गुणा करके (सूर्य या चन्द्र के जिसका ग्रहण हो) दिनार्ध से विभक्त करने से नतांश ज्या होती है। नतांश क्रमज्या को अक्षक्रमज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से स्थूल अक्ष बलन ज्या होती है। पूर्वनत में उत्तर, पश्चिम नत में दक्षिण अक्षबलन चापों का योगान्तर करने से स्फुट अक्षबलन होता है।

इसी प्रकार क्रान्तिवृत्त और समवृत्त का जहॉ सम्पात परम होता है वहॉ तात्कालिक बलन का योगान्तर स्फुट बलन होता है। उसके आगे तथा पीछे क्रान्तिवृत्त में तीन राशि अन्तर पर उनका याम्योत्तर अन्तर एक ही हो जाने से वहॉ बलन स्फुट नहीं होता। स्पश्ट बलन का वहॉ अभाव होने से वहॉ क्रमज्या, उत्क्रमज्या नहीं होती। वहॉ उन्हें ज्ञात करने के लिए पुनः कहते हैं। सब ओर क्षेत्र सूत्र सभी ध्रुव से 24 अंष अन्तर पर योग करे तो वह बिन्दु कदम्ब संज्ञक होता है और वह बलन का बोध कराता है। अपमण्डल के पूर्व से उत्तर व दक्षिण दिषा में कदम्ब भ्रमण वृत्त सदा ध्रुवों के चारों ओर बंधे हुए घूमते है। गोल में जहॉ 24 अंष के तुल्य ज्या क्रान्तिज्या होती है। सभी जगह पर समवृत्त से

क्षितिज याम्योत्तर में मिलता है। उसके लम्बवत् सूत्र जहॉ योग करते हैं वह सम संज्ञक स्थान है। सम, ध्रुव और कदम्ब के उपर के अतिरिक्त अन्य स्थान पर ग्रह भ्रमण करते हैं। वृत्तरूप सूत्रों के बलनों के अन्तर पर अक्षबलन तथा अयनबलन के मध्य समध्रुव सूत्र होता है।

कदम्ब ध्रुव सूत्रों के अन्तर आनयन करके उससे तीन राशि दूरी पर कदम्ब सम सूत्रान्त पर वे सभी दिशाओं में स्फुट होते हैं। अथवा क्रान्ति वृत्तस्थ ग्रह के चारों ओर 90 अंश दूरी पर एक त्रिज्यावृत्त न्यास करके वहॉ विषुवद्समवृत्त के मध्य अन्तर के द्वारा अयन बलन ज्ञात करके विषुवद और क्रान्तिवृत्त का अन्तर ज्ञात करके क्रान्तिवृत्त समवृत्त का अन्तर स्फुट बलन होता है। अपमण्डल के पूर्व में उसका याम्योत्तर षर होता है उसको बलन आनयन के लिए क्रान्ति में योग करने के लिए कुबुद्धि लोग कहते हैं।

मकरादि से याम्योत्तर वृत्त यदि कदम्ब से होकर जाय तो विषुवद और क्रान्तिवृत्त के एक हो जाने से ऐसा होता है। वहॉ अयन बलन नहीं होता तथा वहॉ कदम्ब और ध्रुवप्रोत वृत्तों का अन्तर नहीं रहता है।

गोल अर्थात् क्रान्तिवृत्त में मकर के आदि स्थान उपलक्षण द्वारा अयन संधि कही है। वह जैसे -जैसे स्वअहोरात्रवृत्त में भ्रमण करती है वैसे-वैसे पूर्व प्रतिपादित प्रकार से कदम्ब अपने मण्डल में भ्रमण करता है। याम्योत्तर वृत्त जो ध्रुवप्रोत में स्थित कुम्भादि तथा मीनादि से होकर जाता है उसमें बलन होता है क्योंकि सौम्य सूत्र का कदम्ब से अन्तर षिंजनी रूप में कदम्ब भ्रमण मण्डल में अयन गत कालांश क्रम क्रान्तिज्या ही बलन होता है। उत्क्रमज्या बाण रूप होती है तथा त्रिज्या क्रमज्या होती है। सत्रिम सूर्य की क्रान्ति क्रमज्या से बलन आनयन करना चाहिये।

जिन आचार्यों ने जो उत्क्रमज्या से क्रान्तिज्या तुल्य कहा है व भ्रमवश कहा है। उस भ्रान्ति के निवारण के लिए ही आचार्य ने नतकाल की क्रमज्या ज्ञात करने के लिए कहा है न कि उत्क्रमज्या। और इसी युक्ति से विक्षेप तथा अक्षांश क्रमज्य से ज्ञात करने के लिए कहा है।

अयन तथा अक्षांश (रवि तथा चन्द्र) का के कारण रवि और चन्द्रग्रहण में वलन संस्कार कला प्रभावों के कारण आकाश के पूर्व पश्चिम कपाल में ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष की दिशा ज्ञान होता है। जिस दिशा में पूर्व कपाल या पश्चिम कपाल में ग्रहण होता है उसी दिशा में यह बलन होता है। सूर्य तथा चन्द्र, सूर्य ग्रहण में समान होने के कारण केवल चन्द्रमा द्वारा दोनों ग्रहों का आयनबलन निकाला जा सकता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र दिनार्ध से नत और सूर्यग्रहण में सूर्य दिनार्ध से नत निकाल

कर उसका पल बनायें। उसको 90 से गुणा करके अपने दिनार्ध पल से भाग देने पर अंशादि फल प्राप्त होता है। यह पूर्व पश्चिम दिनार्ध के अनुसार उसी दिशा में नत होता है। नत को अपने देश के अक्षांश से गुणा करके 90 से भाग देकर जो प्राप्त होता होगा वह पूर्वनत में उत्तर और पष्चिम नत में दक्षिण बलन होता है। अक्षबलन तथा अयन बलन की एक ही दिशा होने पर दोनों का योग तथा भिन्न दिशा होने पर अन्तर किया जाता है। प्राप्तफल चन्दग्रहण में चन्द्र का और सूर्यग्रहण में सूर्य का अंशादि दिग्बलन होता है। यह स्पष्ट बलन प्राप्त होता है । स्पर्श, मोक्ष आदि किस दिशा में किस प्रकार होगा इससे यह ज्ञात होता है।

स्पष्टबलन, ग्रसितग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम बिन्दु का क्रान्तिवृत्त से कोण होता है वह होता है। इस कोण के दो भाग होते है। स्वस्थान के अक्षांश के कारण अर्थात् विषुवत् वृत्त से दूरी के कारण क्रान्तिवृत्त, क्षितिज को पूर्व कपाल में पूर्व बिन्दु से उत्तर की दिशा में काटता है। अतः क्रान्तिवृत्त ग्रहगोल के पूर्व बिन्दु से पूर्वकपाल में उत्तर की ओर है तथा पश्चिम कपाल में दक्षिण की ओर है। यह अक्ष बलन कहलाता है।

क्रान्तिवृत्त तथा विषुवत वृत्त के मध्य कोण के कारण क्रान्तिवृत्त जब सायन मकर याम्योत्तर पर होता है तब उत्तर की ओर और भी अधिक झुका होता है। जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्त पर 90 होता है। तब यह पूर्व कपाल में दक्षिण की ओर खिसक जाता है। पष्चिम कपाल के लिए दिशायें विपरीत होती है। बलन का यह भाग अयन बलन कहलाता है।

अब आप क्षेत्र द्वारा भी अयन बलन को समझ सकते हैं -

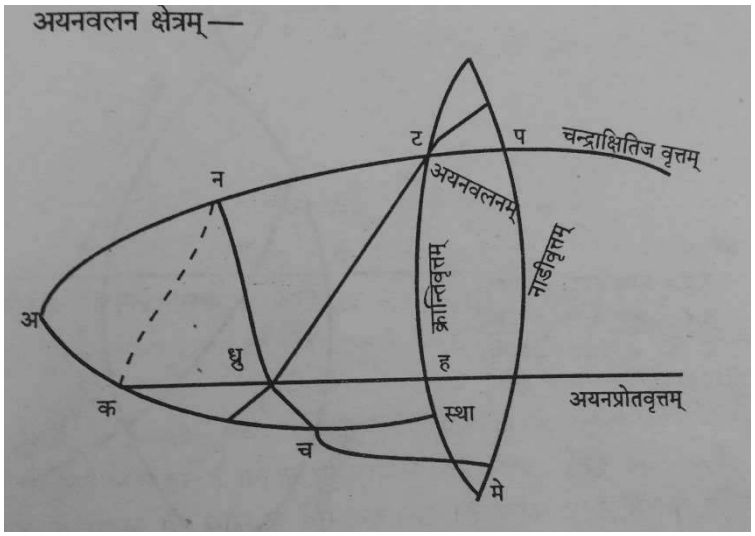

इस क्षेत्र में –'ट प' अयन बलन है। ग्रह बिम्ब एवं क्षितिज वृत्त के बीच नाड़ीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त का अन्तर अयन बलन होता है। यहॉ क्षेत्र में 'टप' अयनबलन है। अथवा ग्रह त्रिज्यावृत्त में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त के बीच में जो अंश हैं वे अयनबलनांश हैं।

निम्न क्षेत्र द्वारा अक्षबलन एंव स्फुट बलन को इस प्रकार समझ सकते हैं -

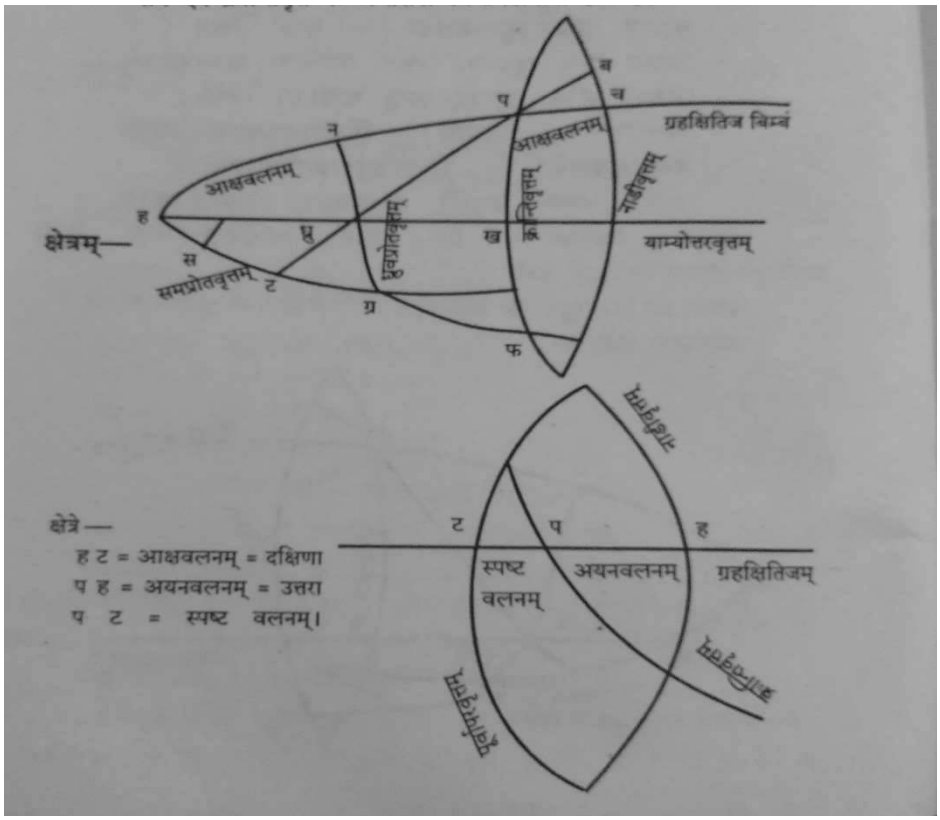

समप्रोत एवं ध्रुवप्रोतवृत्त दोनों के बीच में ग्रह पर लगने वाला कोण आक्षबलन होता है। सम एवं क्रान्तिवृत्त के अन्तरांश स्पष्टबलनांश होते हैं।

क्षेत्र में हट = आक्षबलन = दक्षिणा

प ह= अयनबलन = उत्तरा।

प ट = स्पष्ट बलन।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्न में शर का अर्थ है –

   क. बलन ख. दूरी या अन्तर ग. लम्बन घ. अक्षांश

2. गोलीय रीति के अनुसार स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर को क्या कहते है?

   क. मध्यम शर ख. स्पष्ट शर ग. बलन घ. नति

3. स्पष्ट शर किस वृत्त में होता है?

   क. अहोरात्र वृत्त में ख. ध्रुवप्रोतवृत्त में ग. नाड़ीवृत्त में घ. क्रान्तिवृत्त में

4. ग्रहक्षितिज में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त का अन्तर क्या कहलाता है?

   क. अयन बलन ख. आक्ष बलन ग. स्फुट बलन घ. कोई नहीं

5. आयनबलन ± आक्षबलन = ?

   क. अयन बलन ख. आक्षबलन ग. स्फुट बलन घ. बलन

6. ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को

   क. ग्रहक्षितिज वृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. नाड़ीवृत्त घ. अहोरात्रवृत्त में

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि गणित ज्योतिष में ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का अध्ययन किया जाता है। सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं। ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है। जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धित क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे।

ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं। इस तरह बलन तीन प्रकार का होता है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

शर – सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है।

स्पष्टशर – स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं।

ग्रहस्थान – ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है।

बलन – बलतीति बलनम्। यह तीन प्रकार का होता है। अयनबलन, आक्षबलन एवं स्फुट बलन।

अयन बलन – ग्रहक्षितिज में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त का अन्तर अयन बलन कहलाता है।

आक्षबलन - ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं।

स्पष्टबलन - पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं।

5.6 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ख 3. ख 4. क 5. ग 6. क

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव।

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी।

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शर क्या है।
2. बलन किसे कहते है।
3. शर को क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।
4. बलन का साधन कीजिये।
5. ग्रहण में शर एवं बलन का क्या महत्व है।

इकाई – 6 नवविधकालमान परिचय

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 काल: परिचय, परिभाषा एवं प्रकार

6.3.1 काल: व्युत्पत्ति एवं अवयव

6.4 विभिन्न मत में काल स्वरूप

6.4.1 आचार्य भास्कर मतेन काल प्रवृत्ति

6.4.2 पुराणों में काल की महिमा

6.4.3 श्रीमद्भगवद्गीता में काल वर्णन

6.4.4 पाश्चात्य मतेन काल गणना

6.4.5 नवविधकाल मान

6.5 सारांश

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)–302 के छठी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – काल स्वरूप। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने सिद्धान्त ज्योतिष, ग्रहभगण, भूव्यास- भूपरिधि तथा भूगोल का अध्ययन कर लिया हैं। अब आप काल स्वरूप का अध्ययन करने जा रहे है।

काल सृष्टि-संचालन का मूल है। काल सापेक्ष ही चराचर प्राणी भूसापेक्ष जीवनयापन करते है, यह सर्वविदित है। कलयति लोकान इति काल:। काल नियामक होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्रोक्त काल का उल्लेख इस पाठ में किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप काल से परिचित हो सकेंगे तथा उसके मूलभूत तथ्यों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ बता सकेंगे कि काल किसे कहते है।
- ❖ समझा सकेंगे कि काल क्या हैं।
- ❖ काल के विभिन्न स्वरूप को समझ लेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्रोक्त काल के बारे में जान लेंगे।
- ❖ काल की महिमा का अवबोधन हो जायेगा।

6.3 काल: परिचय, परिभाषा एवं प्रकार

काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है। ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।'' कहीं-कहीं काल को अन्तकृत या संहर्त्ता ही कहा गया है यथा – कालो जगद्भक्षक:। कुछ सूक्तियाँ भी इसी को व्यक्त करती हैं- ''कालो न यातो वयमेव याता।'' भगवान भास्कर ने भी सूर्यसिद्धान्त में काल का निरूपण करते हुए कहा है –

लोकानामन्तकृत काल: कालोऽनय: कलनात्मक:।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।

यहाँ भी काल के दो भेद बताये गये हैं तथा एक भेद को अन्तकृत लोक का नाश करने वाला तथा

दूसरे भेद को कलनात्मक कहा गया है। कलनात्मक काल भी मूर्त्त और अमूर्त्त भेद से दो प्रकार का है। जो व्यवहार योग्य काल है उसे स्थूल अथवा मूर्त्त कहते हैं तथा जो व्यवहार योग्य नहीं हैं उसे सूक्ष्म और अमूर्त्त कहते हैं। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत् काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्टयारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि एक प्रक्रिया हैं सृष्टयन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता है तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ-साथ सृष्टयारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है- ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।'' ब्रह्मा को सृष्टि की रचना में ४७४०० दिव्यवर्ष का समय लगता है। जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में कथित है –

ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा (४७४) दिव्याब्दा: शतघ्ना वेधसो गता:।।

अत: सृष्टयन्त और कल्पान्त दोनों ही काल की एक महत्तम इकाई के पर्याय है। इसी प्रकार स्थूल काल की लघुतम इकाई प्राण तथा सूक्ष्म काल की लघु इकाई त्रुटि कही गई है। गणना हेतु ज्योतिषशास्त्र में काल के नवभेद बताये गये हैं। जो इस प्रकार हैं-

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।।

अर्थात् 1. ब्राह्म, 2. दिव्य, 3. पैत्रय, 4. प्राजापत्य, 5. गौरव (गुरू सम्बन्धी) 6. सौर, 7. सावन, 8. चान्द्र तथा 9. नाक्षत्र ये नव मान कहे गये हैं। यद्यपि ये मान कालभेद के रूप में कहे गये हैं। किन्तु ये सभी मान मात्र मापक हैं। इन्हें कालमापक इकाईयों का भेद मानना चाहिए। जैसे किसी दीवार को मापने के लिए हम अंगुल और हस्त का भी प्रयोग कर सकते हैं। माप्य दीवार एक ही है तथा मापक

उपकरण भिन्न- भिन्न हैं। इसी प्रकार काल एक ही अनादि अनन्त है। उसे मापने के लिए हम कभी सूर्य, कभी चन्द्र, कभी वृहस्पति आदि का उपयोग करते हैं। आचार्य भास्कर ने भी सिद्धान्त लक्षण में कहा है – त्रुट्यादि प्रलयान्तकालकलना मान: प्रभेद: कमात्। त्रुटि से आरम्भ कर प्रलयान्त काल तक काल गणना तथा उनको मानों अर्थात् मापकों के भेदों का विवेचन सिद्धान्त में किया जाता है। काल की गति के विषय में मतान्तर मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि काल सीधी रेखा में गतिशील रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल भी चक्र भ्रमण करता है। इसीलिए इसे कालचक्र भी कहा जाता है। नेपाल और तिब्बत में कालचक्रज्योतिष नाम से ज्योतिष की एक प्रमुख विधा है। साहित्यकारों ने काल के चक्र भ्रमण को इंगित करते हुए लिखा है –

''चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति:।''

आजकल भी एक प्रसिद्ध उक्ति है इतिहास सदैव अपने आप को दुहराता है। ये मात्र सूक्तियाँ नहीं है। इनके मूल में कुछ महत्वपूर्ण अनुभव भी होते हैं।

आचार्य पराशर ने भी दशाओं के वर्णन में एक कालचक्र दशा का उल्लेख किया है। यदि हम ब्रह्माण्ड के स्वरूप पर ध्यान दें तो समस्त ब्रह्माण्ड ही चक्रभ्रमण करता हुआ प्रतीत होगा। यदि ब्रह्माण्ड के शब्दार्थ को लिया जाय तो अनेक गुत्थियाँ स्वत: ही सुलझ जाती है। ब्रह्म + अण्ड, अर्थात् ब्रह्म द्वारा निर्मित अण्ड जिसमें समस्त सौर मण्डल एवं नक्षत्रादि है, तथा उसकी परिधि अण्डाकार (दीर्घ वृत्तानुकारी) है। इसी अण्डाकार परिधि के अन्दर ग्रहादिकों की दीर्घवृत्ताकार कक्षायें है तथा इसी अण्डाकार परिधि में कालचक्र भी भ्रमण करता है। ऐसी स्थिति में काल की गति एक सीधी रेखा में मानना युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। आकाश मण्डल में स्थित इकाईयों के चक्रभ्रमण को भगवान व्यास ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है।

उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि।
स हि भ्रमन् भ्रामयते नित्यं चन्द्रादित्यौ ग्रहै: सह।।

अर्थात् ध्रुव शिंशुमार चक्र में अवस्थित रहते हुए सूर्य-चन्द्र सहित समस्त नक्षत्र चक्र को घुमाता हुआ स्वयं भी घूमता है। आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है कि आकाशस्थ सभी पिण्ड भ्रमण कर रहे हैं। जहाँ तक सीधी रेखा में गतिशील होने का प्रश्न है वह किसी नियत काल या नियत दूरी तक तो सम्भव है अनन्तकाल और अनन्त दूरी तक सम्भव नहीं है। पृथ्वी को भी हम सीधी रेखा में देखते हैं। जब कि हम जानते हैं पृथ्वी गोल है। परन्तु हम पृथ्वी के गोलत्व को नहीं देख पाते। हम कही भी जायेंगे पृथ्वी हमे समान सीधी, समतल सरल रेखा में ही दिखलाई पड़ेगी। इस रहस्य को गणित का यह सिद्धान्त सुलझाता है – ''परिधे: षण्नवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते।'' अर्थात् परिधि का

96 वाँ भाग दण्डवत (दण्ड के समान) सीधी रेखा में दिखाई पड़ता है। हमारी दृष्टि 96 वें भाग से भी बहुत न्यून भाग को देख पाती है। इसीलिए पृथ्वी हमें सीधी सरल रेखा में दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार काल का भी कुछ दूरी तक एक सीधी रेखा में जाते हुए प्रतीत होना स्वाभाविक है।

मनुष्य की भी एक सीमा है उससे अधिक वह तो न जा सकता है न देख सकता है। पृथ्वी के वायुमण्डल से बाहर जाने पर पृथ्वी का स्वरूप दिव्य नेत्रों से अथवा सक्षम उपकरणों से देखा जा सकता है, किन्तु अपने चर्म चक्षुओं से वायुमण्डल की सीमा पर भी जाकर हम कुछ नहीं देख सकते। क्योंकि जाते ही घोर अन्ध तमस ही दिखाई देगा। जैसा कि सीता के अन्वेषण के समय अपनी गति से सीमान्त तक जाकर जामवन्त जी ने देखा और सुग्रीव को बताया –

एतावद् वानरै: शक्यं गन्तुं वानरपुंगवा।
अभास्करममर्यादं न जानीमस्तत: परम्।।

इस प्रकार शास्त्रीय प्रमाण एवं गणितीय आधार पर हम कह सकते हैं कि काल का भी चक्रभ्रमण होता है, किन्तु इसकी अवधि निर्धारित करना दुष्कर है।

6.3.1 व्युत्पत्ति व विभिन्न अवयव

कल संख्यायने धातु से घञ् प्रत्यय करने पर (कलन अर्थ में) काल शब्द का निर्माण होता है। कलयते लोकान इति काल:। कालविधायक होने के कारण ज्योतिषशास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। विश्व के समस्त चराचर प्राणी कालाभिभूत है। अत: इस शास्त्र की महत्ता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि प्रत्येक को उनके अपने-अपने निर्धारित काल में होने वाली घटनाओं की जिज्ञासा होती है।

कालमापन हेतु जिन नव मानों का उल्लेख किया गया है उनमें से चार कालमान हमारी दिनचर्या से जुड़े हैं। वे हैं सौर- चन्द्र-सावन और नाक्षत्र। जब हमे मास से अधिक काल की गणना करनी होती है तब हम सौर मान का प्रयोग करते हैं। सूर्य एकमास तक एक राशि में रहता है। 12 राशियों में भ्रमण करने में 12 मास अर्थात् एक वर्ष लगता है। मास की गणना हम चान्द्रमास से करते है। अमान्त से अमान्त तक अथवा पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक चान्द्रमास होता है। दिन की गणना हम पृथ्वी के दिन अथवा सावन दिन से करते हैं। दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन या पृथ्वी का दिन होता है। एक नक्षत्र के उदय काल से द्वितीय उदय काल तक नाक्षत्र काल होता है। इस काल की अवधि सुनिश्चित है। 60 घटी बाद यह परिभ्रमण कर पुन: उसी बिन्दु पर आ जाता है। इसीलिए नाक्षत्र दिन का मान सदैव एक समान 24 घण्टे या 60 घटी का ही होता है। इसी स्थिर काल के आधार पर घण्टा मिनट का विचार किया जाता है या घटी पल आदि लघु काल खण्डों का विभाजन या गणना

की जाती है। इस काल विभाजन व्यवस्था को आचार्य भास्कर ने अपनी प्रसिद्ध रचना सिद्धान्त शिरोमणि में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है –

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्।
मासांस्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।।
यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासाराद्यम्।
तत् सावनाच्च घटिकादिमार्क्षमानात्।।

घटयादि लघुकालखण्डों की गणना नाक्षत्रमान के अतिरिक्त अन्य सौरादि मानों से सम्भव नहीं हैं, उन मानों के प्रतिदिन न्यूनाधिक होने के कारण। नाक्षत्र काल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि इसका मान ६० घटी या २४ घण्टे का प्रतिदिन होता है। घटी यन्त्र (घड़ी) द्वारा सूचित काल नाक्षत्र काल ही होता है, प्रतिदिन समान रूप होने के कारण।इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभिन्न कालमानों का उपयोग होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। दैनिक उपयोग में आने वाले कालमानों का विवरण इस प्रकार है –

काल के अवयव

अमूर्त्त काल सूक्ष्म	मूर्त्त काल (स्थूल)
पद्मपत्र भेदनकाल = १ त्रुटि	६ विपल = १ प्राण
६० त्रुटि = १ रेणु	६० विपल = १ पल
६० रेणु = १लव	६० पल = १ घटी
६० लव = १ लीक्षक	६० घटी = १ अहोरात्र
	३० अहोरात्र = १ मास
६० लीक्षक = १ प्राण	१२ मास = १ वर्ष

२४ सेकेण्ड = ६० विपल = १ पल
२४ मिनट = ६० पल = १ घटी
२४ घण्टा = ६० घटी = १ अहोरात्र

काल की बड़ी इकाई

कृतयुग = १७२८००० सौरवर्ष
त्रेतायुग = १२९६००० सौरवर्ष
द्वापरयुग = ८६४००० सौरवर्ष
कलियुग = ४३२००० सौरवर्ष

महायुग = ४३२०००० सौरवर्ष

मनु = ३०६७२०००० सौरवर्ष

कल्प = ४३२ ०००००० सौरवर्ष ब्राह्म दिन

ब्राह्म अहोरात्र = ८६४०००००० सौरवर्ष

काल की बड़ी इकाईयों की गणना सौरमान से ही की गई है। इनके अतिरिक्त सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है –

सौरेण द्युनिशोर्मानम् षडशीतिमुखानि च।
अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्ते: पुण्यकालताम्।।

अर्थात् सौर अहोरात्रों के साथ-साथ षडशीतिमुख संक्रान्तियों के दिनों अयनों एवं विषुवदिनों तथा संक्रान्तियों के पुण्यकालों का निर्णय भी सौरमान से ही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. काल अनन्त और अनादि होने के कारण ..... है।
2. लोकानामन्तकृत काल: कालोऽन्य: ..... ।
3. ब्रह्मा जी को सृष्टि रचना में ..... दिव्यवर्ष का समय लगता है।
4. कल संख्यायने धातु से ..... प्रत्यय करने पर काल शब्द की व्युत्पत्ति होती है।
5. ब्रह्मा जी का एक अहोरात्र ..... कल्प के बराबर होता है।
6. काल: सृजति ..... ।
7. ६० त्रुटि ..... ?
8. २४ मिनट = ?
9. परिधि का ..... भाग दण्डवत (दण्ड के समान) सीधी रेखा में दिखाई पड़ता है।
10. कालविधायक होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को ..... भी कहा जाता है।

मकर राशि में सूर्य के प्रवेश करने पर उत्तर अयन तथा कर्क राशि में प्रवेश करने (कर्क संक्रान्ति से) से दक्षिण अयन की प्रवृत्ति होती है। मेष और तुला में सूं जिस दिन प्रवेश करता है उसे विषुव दिन कहते है। वस्तुत: सायन मेष और सायन तुला में सूर्य के रहने पर विषुव दिन होता है। विषुव दिनों में दिन रात्रि का मान बराबर होता है। षडशीति का अभिप्राय है- तुला संक्रान्ति से आरम्भ कर ८६ दिनों की

अवधि षडशीति मुखमान। तुलाराशि से आरम्भ कर 86 अंशों के अन्तराल पर चार षडशीति मान होते हैं। ३४४ दिनों में चारों षडशीति मान पूर्ण होते हैं। वर्षमान ३६० दिन में ३४४ दिन षडशीति के अतिरिक्त शेष १६ दिन कन्याराशि के अवशिष्ट रह जाते हैं। ये १६ दिन श्राद्ध के लिए उपयुक्त होते हैं। इस अवधि में की गई पितृ क्रिया अक्षय पुण्य देने वाली होती है। सूर्यसिद्धान्त में इन १६ दिनों को यज्ञतुल्य काल कहा गया है –

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम्॥

ये सभी व्यावहारिक काल हैं। इनका उपयोग निरन्तर होता रहता है। इनके अतिरिक्त गौरव मान (गुरू से सम्बन्धित) भी प्रयोग में आता है। इसका अधिक विवेचन नहीं मिलता है केवल इतना ही कहा गया है कि वृहस्पति के मध्यम मान से राशि के भोगकाल को एक संवत्सर कहते हैं। संवत्सर साठ होते हैं जिनकी गणना प्राचीन काल में विजयादि क्रम से होती थी जैसा कि सूर्यसिद्धान्त कहता है-

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकै:।
राशिभि: सहिता: शुद्धा: षष्ट्या स्युर्विजयादय:॥

किन्तु आज व्यवहार में प्रभवादि ६० संवत्सर हैं। उनके तीन विभाग किये गये हैं –

१. ब्रह्मविंशतिका २. विष्णुविंशतिका ३. रूद्रविंशतिका

इन संवत्सरों की अवधि ११ मास से १३ मास की तक की होती है। भारतीय परम्परा में काल अनन्त है उसकी परिभाषायें तथा इकाईयाँ भी अनन्त हैं। यहाँ केवल दैनिक जीवन में व्यवहृत कालमानों का वर्णन किया गया हैं। साठ संवत्सरों के नाम निम्नलिखित हैं –

	ब्रह्मविंशतिका		**विष्णुविंशतिका**		**रूद्रविंशतिका**
१	प्रभव	२१	सर्वजित्	४१	प्लवंग
२	विभव	२२	सर्वधारी	४२	कीलक
३	शुक्ल	२३	विरोधी	४३	सौम्य
४	प्रमोद	२४	विकृति	४४	साधारण
५	प्रजापति	२५	खर	४५	विरोधकृत्
६	अंगिरा	२६	नन्दन	४६	परिधावी
७	श्रीमुख	२७	विजय	४७	प्रमादी
८	भाव	२८	जय	४८	आनन्द
९	युवा	२९	मन्मथ	४९	राक्षस

१०	धाता	३०	दुर्मुख	५०	नल
११	ईश्वर	३१	हेमलम्बी	५१	पिंगल
१२	बहुधान्य	३२	विलम्बी	५२	कालयुक्त
१३	प्रभावी	३३	विकारी	५३	सिद्धार्थी
१४	विक्रम	३४	शर्वरी	५४	रौद्र
१५	वृष	३५	प्लव	५५	दुर्मति
१६	चित्रभानु	३६	शुभकृत्	५६	दुन्दुभि
१७	सुभानु	३७	शोभकृत्	५७	रूधिरोद्गारी
१८	तारण	३८	क्रोधी	५८	रक्ताक्षी
१९	पार्थिव	३९	विश्वावसु	५९	क्रोधन
२०	व्यय	४०	पराभव	६०	क्षय

विभिन्न कालमानों का सुव्यवस्थित और प्रमाणिक विवेचन भारतीय वैदिक वांगमय में उपलब्ध है। इतना विस्तृत विवरण अन्यत्र दुर्लभ है।

6.4 विभिन्न मतानुसार काल स्वरूप

व्यावहारिक दृष्ट्या एवं शास्त्रीयदृष्ट्या काल के महत्व को जानते हुए ज्योतिषशास्त्र के आदि पुरूष महात्मा लगध ने वेदांगज्योतिष में सर्वप्रथम काल को अभिवादन करते हुए कहा है कि –

पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासांगं प्रणम्य शिरसा शुचि:।।
प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मना।।

अब आइए हम विभिन्न मतानुसार काल के स्वरूपों को जानने का प्रयास करते हैं।

6.4.1 भास्कर मतेन कालप्रवृत्ति

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तकालीन आचार्य भास्कराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणी में कालप्रवृत्ति के बारे में इस प्रकार कहा गया है –

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधो: सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्ति:।।

अर्थात् लंकापुरी नगरी में जब सूर्य का प्रथम बार उदय हुआ तब चैत्र शुक्ल रविवार से दिन, मास, वर्ष, युग तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति हुई। यहाँ प्रवृत्ति शब्द का अर्थ सृष्टि के आदि से है। जिस समय सूर्य का प्रथम बार लंका में उदय हुआ। उस समय से सृष्टि का आरम्भ कहा गया है तथा उस समय चैत्र शुक्ल पक्ष रविवार था तथा उसी घड़ी से कल्प, युग,वर्ष, मास तथा दिन की गणना प्रारम्भ हुई। जिस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में काल गणना के इन अवयवों की प्रवृत्ति हुई उसी प्रकार प्रलयकाल में इन का अन्त हो जाता है तथा सभी जीवों एवं सूर्यादि ग्रहों का भी अन्त हो जाता है। ऐसे काल को अव्यक्त काल कहते हैं तथा इसका अभिप्राय अव्यक्त अवस्था से है। इस युक्ति से काल अनादि तथा अनन्त कहा गया है। उस अव्यक्त काल से सृष्टि का आरम्भ होता है तथा व्यक्त जीव एवं भचक्र ग्रहादि का प्रादुर्भव होता है। उसी समय से व्यक्त नाम दिन, मास, वर्ष, युग, कल्पादि की प्रवृत्ति होती है। जैसे – मधुमासादि, शुक्ल पक्षादि, दिनादि, सौर दिनादि तथा मास वर्ष, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति होती है।

6.4.2 पुराणों में काल महिमा

पुराणों (विष्णु पुराण, कूर्म पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण) में काल महिमा का वर्णन –

कलनाद्, सर्वभूतानां स काल: परिकीर्तित:।
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजर: पर:॥
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वर:।
ब्रह्मणो बहवो रूद्रा अन्ये नारायणादय:॥
एकोऽहि भगवानीश: काल: कविरिति स्मृत:।
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्राकृतोलय:॥
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भव:।
परं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकर:॥
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुन:।
तस्मात् कालात्मकं विश्वं स एव परमेश्वर:॥
अनादि निधन: कालो रूद्र: संकर्षणस्मृत:।
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु संकर्षण: स्मृत:॥
सर्वभूतसमित्वाच्च स रूद्र: परिकीर्तित:।
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वर:॥

यहाँ उपर्युक्त श्लोक में भी काल को बतलाते हुए कहते है कि- काल: कलयताम्यहम्। स्वं भगवान

एव काल:।। सर्वभूतानां अर्थात् सभी प्राणियों का अन्त करने वाला संहार रूपी काल को 'अन्तकृत काल' अथवा 'महाकाल' कहते हैं। इसी प्रकार एक कलनात्मक काल होता है, जो मानव जीवन में व्यावहारिक काल के रूप में जाना जाता है। काल को हम अनादि, अनन्त, अजर तथा अमर आदि के नाम से भी जानते है। ब्रह्मा, विष्णु (नारायण) एवं रूद्र को विभिन्न काल रूपों में यहाँ वर्णन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अन्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त में भगवान तथा भृगु संवाद में भगवान द्वारा कथित वाक्य है –

लंकायामर्कोदये चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ किंस्तुघ्नादौ रौद्रादौ कालप्रवृत्ति:। यहाँ अश्विन नक्षत्र तथा किंस्तुघ्न करण का नाम विशेष रूप से दिया गया है, शेष आचार्य भास्कर के अनुसार ही है, जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है।

काल: पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्।।

काल सभी भूतों अर्थात् प्राणियों को (एवं उनके साथ-साथ सभी वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों को भी) अपने साथ पकाता है। पकाना अर्थात् परिपक्व बनाना, अन्तिम अवस्था तक ले जाना। काल न केवल सभी जड़-चेतन पदार्थों को पकाता है अपितु स्वयं भी पकता है। अर्थात् काल की भी अन्तिम अवस्था आती है।

यहाँ पुनः आप के मन में प्रश्न उठता है कि काल की अन्तिम अवस्था कब आती है? इसका उत्तर है- 'कान्ते' अर्थात् कस्य अन्ते। कः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मणः अन्ते अवसानकाले अर्थात् ब्रह्मा का अन्तिम समय आने पर । प्रचीन सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं किन्तु ब्रह्मा का भी अन्त होता है। तत्पश्चात् दूसरे ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा की परमायु आयु 100 वर्ष मानी गई है एवं ब्रह्मा का 1 दिन 2 कल्प के तुल्य होता है । 1 कल्प में 1000 महायुग होते हैं। इन महायुग-कल्प-ब्राह्म दिन की चर्चा तत्तत्स्थलों पर की जाएगी। प्रसंगवशात् केवल इन विषयों का नामोल्लेख यहॉ किया गया है।

अब हम लोग प्रकृत पर पुनः आते हैं। जैसा कि आप ने ऊपर पढ़ा कि ब्रह्मा का भी अन्त काल होता है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय के समय काल पकी हुई सारी सृष्टि के साथ स्वयं भी पचता हुआ उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है।

6.4.3 श्रीमद्भगवद्गीता में काल वर्णन –

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्त:।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिता: प्रत्यनीकेषु योधा:।।

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है कि हे अर्जुन! मैं सम्पूर्ण लोक का विनाश करने वाला इन उग्ररूपों से सम्पन्न बढ़ा हुआ काल हूँ। मैं इन असुर लोगों का संहार करने के लिए ही प्रवृत्त हुआ हूँ। जो इस समय तुम्हारी प्रतिपक्ष सेनाओं में योद्धा स्थित हैं, ये सभी तुम्हारे बिना भी अर्थात् तुम्हारे युद्ध न करने पर भी जीवित नहीं रहेंगे।

और भी –

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्व: सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षय: कालो धाताहं विश्वतोमुख:।।

यहाँ भी भगवान अपने को अक्षय काल अर्थात् कभी न खत्म होने वाला काल के रूप में बतला रहे हैं।

6.4.4 पाश्चात्य मत में काल गणना

पाश्चात्य कालगणना पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात हो जायेगा कि १७ वीं शताब्दी तक कालगणना की कोई स्पष्ट रूपेरखा नहीं बन पाई थी। ६७३ ई. पूर्व तक रोमन पंचांगों में वर्षमान ३०४ दिन ही माने जाते थे। १० मासों का वर्ष होता था। वर्षारम्भ मार्च से तथा वर्षान्त २५ दिसम्बर को होता था। शीतकाल के २ मासों की गणना नहीं होती थी। ईसा पूर्व ६७३ में नूमा पोम्पिलियस ने ५१ दिनों (२ मासों) को जोड़कर वर्षमान ३५५ दिन का बनाया तथा जैनस देवता के नाम पर जनवरी तथा फरवरी जोड़कर वर्षारम्भ जनवरी से आरम्भ किया। आवश्यकतानुसार वर्षमान में कुछ वर्षों के अन्तराल पर २२-२३ दिनों को जोड़कर शुद्ध किया जाता था। ईसा पूर्व ४४ ई. में जूलियस सीजर ने मिस्री ज्योतिषी सोसिजेन्स के सुझाव पर वर्षमान को ३६५.२५ दिनों का घोषित किया। ४४ ईसा पूर्व जूलियस सीजर के सम्मान में मार्च से पाँचवें मास क्विन्टिलिस को जुलाई कर दिया गया। पुन: ८ ईसापूर्व में जुलियस सीजर के उत्तराधिकारी आगस्टस सीजर के नाम पर सेक्स्टिलिस मास का नाम अगस्त कर दिया गया। दोनों राजाओं के सम्मान में जुलाई और अगस्त मासों की दिन संख्या ३१-३१ दिन कर दी गई तथा दिन का सन्तुलन बनाये रखने के लिए फरवरी से २ दिन घटा दिये गये।

इसी प्रकार ग्रीगोरियन पंचांग में परिष्कार किये गये। सन् १५८२ ई0 में पोप ग्रिगोरी त्रयोदश ने आदेश पारित किया कि ५ अक्टूबर शुक्रवार को १५ अक्टूबर शुक्रवार माना जाय। लगभग २०० वर्ष बाद पुन: ११ दिनों की त्रुटि पाई गई। अत: उसे दूर करने के लिए सन् १७५२ ई0 में ३ सितम्बर को १४ सितम्बर घोषित किया गया। भविष्य में भी संशोधन सम्भव है। अत: भारतीय कालगणना पद्धति ही पूर्णशुद्ध एवं वैज्ञानिक है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. वृहस्पति के मध्यम मान से राशि के भोगकाल को कहते हैं -
   क. एक संवत्सर ख. एक नाक्षत्र मान ग. एक लुप्त वत्सर घ. गौरव मान
2. सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने से होता है –
   क. उत्तरायण का आरम्भ
   ख. दक्षिणायन का आरम्भ
   ग. ऋतु परिवर्तन
   घ. सौम्य गोलारम्भ
3. निम्न में वेदांग ज्योतिष के प्रणेता है –
   क. भास्कर ख. लगध ग. कमलाकर घ. गणेश
4. श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अपने को समासों में किस समास की संज्ञा दी है।
   क. बहुव्रीहि ख. द्वन्द्व ग. कर्मधारय घ. केवल
5. एक कल्प में कितने महायुग होते है –
   क. १००० महायुग ख.२००० महायुग ग. ३००० महायुग घ. कोई नहीं

6.4.5 नवविधकालमान का परिचय -

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव ।।

ब्राह्म मानम् – ब्रह्म सम्बन्धिमानं ब्रह्म मानं । ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कल्पद्वयं ब्रह्मा जी की एक अहोरात्र का मान होता है । इसी अहोरात्र के मान से ब्रह्मा की परमायु 100 वर्ष की है । एक कल्प में 1000 महायुग होता है ।

दिव्य मानम् - देवताओं से सम्बन्धित दिव्य मान होता है । मानवों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन के बराबर होता है ।

पैत्र मानम् – पितरों से सम्बन्धित मान को पितृ मान कहते है । मानवों के एक पक्ष के बराबर इनका एक दिन होता है पितरों का निवास स्थान चन्द्रमा के उर्ध्व भाग में है। ऐसा कल्पना प्राचीन ज्योतिर्विदों के द्वारा किया गया है ।

प्रजापति मान - प्रजापति सम्बन्धित मान प्रजापति मान होता है ।

गुरू मान – वृहस्पति के मध्यम मान से यह मान निकाला जाता है ।

सौर मान – सूर्य सम्बन्धित मान को **सौरमान** कहते है।

सावन मान – **इनोद्वय द्वयान्तरं तदर्क सावनं दिनम्।** एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के अन्तर मान को सावन मान के नाम से जाना जाता है।

चान्द्र मान – चन्द्रमा सम्बन्धित मान को चान्द्रमान कहते है। चन्द्रमा के अनुसार इस मान की गणना की जाती है।

नाक्षत्र मान – एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र तक के उदय मान को नाक्षत्र मान कहते है।

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध नवविधकालमान है – ब्राह्म, दैव, पैत्र, प्राजापत्य, गुरु या वृहस्पति, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र मान। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है। ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।'' कहीं-कहीं काल को अन्तकृत या संहर्त्ता ही कहा गया है यथा – कालो जगद्भक्षक:। कुछ सूक्तियाँ भी इसी को व्यक्त करती हैं- ''कालो न यातो वयमेव याता।'' भगवान भास्कर ने भी सूर्यसिद्धान्त में काल का निरूपण करते हुए कहा है – लोकानामन्तकृत काल: कालोऽनय: कलनात्मक:। स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।यहाँ भी काल के दो भेद बताये गये हैं तथा एक भेद को अन्तकृत लोक का नाश करने वाला तथा दूसरे भेद को कलनात्मक कहा गया है। कलनात्मक काल भी मूर्त्त और अमूर्त्त भेद से दो प्रकार का है। जो व्यवहार योग्य काल है उसे 'स्थूल' अथवा 'मूर्त्त' कहते हैं तथा जो व्यवहार योग्य नहीं हैं उसे 'सूक्ष्म' और अमूर्त्त कहते हैं। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत् काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्टयारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि

एक प्रक्रिया हैं सृष्टयन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता है तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ-साथ सृष्टयारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है- ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।'' सृष्टि की रचना में ब्रह्मा को ४७४०० दिव्यवर्ष का समय लगता है।

6.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. अनिर्वचनीय
2. कलनात्मक
3. ४७४००
4. घञ्
5. दो कल्प
6. भूतानि
7. १ रेणु
8. १ घटी
9. ९६ वाँ भाग
10. कालशास्त्र

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. क
2. क
3. ख
4. ख
5. क

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री।
2. सिद्धान्तशिरोमणि- चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. प्राच्यविद्यानुशीलनम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।
5. श्रीमद्भगवद्गीता – श्रीरामभद्राचार्य विरचितम्।
6. विष्णु पुराण

6.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

काल – कलनात्मक एवं अव्यक्त, अनादि, अनन्त, अनिवर्चनीय, अगोचर।

कलनात्मक काल – जिसकी गणना की जा सके।

अन्तकृत काल – सृष्टि का अन्त करने वाला।

नवविधकाल – ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध रूप से नवविधकाल मान का उल्लेख है। वे है- ब्राह्म, दिव्य, पितृ, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, नाक्षत्र एवं चान्द्र।

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. काल किसे कहते है? स्पष्ट कीजिये।
2. अन्तकृत काल से क्या तात्पर्य है? लिखिये।
3. काल के महत्व का प्रतिपादन स्वशब्दों में कीजिये।
4. काल के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कीजिये।
5. पुराणों में काल की महिमा पर प्रकाश डालिये।